प्रकाशक

कबीर पारख संस्थान
संत कबीर मार्ग, प्रीतम नगर, इलाहाबाद—211011
दूरभाष : (0532) 2436820, 2436020, 2436100
Visit us : www.kabirparakh.com
E-mail : kabirparakh@yahoo.com

पहली बार वि० सं० 2052, सन् 1995
छठीं बार वि० सं० 2066, सन् 2009
सत्कबीराब्द 611

ISBN : 81-8422-054-5

© **कबीर पारख संस्थान**

मूल्य : 100.00 रुपये

मुद्रक

इण्डियन प्रेस प्रा० लि०
पन्ना लाल रोड, इलाहाबाद

Prashnottari : ABHILASH DAS

भूमिका

प्राणिमात्र मूलत: एक समान ज्ञान-गुण सम्पन्न चेतन होते हुए भी देहोपाधि से सबकी योग्यताएं, जानने-समझने तथा ग्रहण करने की क्षमताएं अलग-अलग हैं। मानवेतर प्राणी तो जीवन-निर्वाह तथा प्रजनन के अतिरिक्त अन्य किसी विषय पर कुछ सोच ही नहीं सकते। मनुष्य में भी ऐसे लोगों की बहुत बड़ी संख्या है जिनके सोच का दायरा पेट और प्रजनन तक ही सीमित रहता है। परन्तु कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं जो इनसे ऊपर उठकर अन्य अनेक विषयों पर सोचते हैं और उन्हें समझने का प्रयास करते हैं।

किसी समस्या के समाधान के लिए या किसी विशेष बात को समझने के लिए दो ही मुख्य रास्ते हैं—एक तो स्वयं उस पर गहराई से चिंतन कर किसी ठोस निष्कर्ष पर पहुंचा जाये और स्वस्थ समाधान ढूंढ़ लिया जाये, दूसरा—किसी विवेकी-विद्वान पुरुष के पास विनम्रतापूर्वक जाकर उनके चरणों में बैठकर उसे समझा जाये। पहला रास्ता किसी विशेष प्रतिभासम्पन्न के लिए ही है, सामान्य मनुष्य तथा साधक के लिए दूसरा रास्ता ज्यादा सुकर होता है।

संसार में मुख्य दो समस्याएं या शंकाएं बड़ी जटिल हैं—मनुष्य का अपना अस्तित्व और मन। शेष सारी समस्याएं एवं शंकाएं इन्हीं के विस्तार हैं। जिन्होंने इन दोनों समस्याओं को सुलझा लिया या दोनों शंकाओं का समाधान कर लिया उनके लिए सारी समस्याएं सुलझ गयीं और उनकी सारी शंकाओं का समाधान हो गया। ऐसे ही महापुरुषों के सान्निध्य में रहकर अन्य मनुष्य भी अपनी शंकाओं का समाधान कर सकते हैं।

यह पूरी पुस्तक प्रश्नोत्तर रूप में है। सन 1971 में जब 'पारख प्रकाश' का प्रकाशन शुरू हुआ तब उसमें 'शंका समाधान' एक स्तम्भ रखा गया। इस स्तम्भ में परम पूज्य गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा जिज्ञासुओं के प्रश्नों का उत्तर दिया जाता रहा। प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं सबका संकलन है। इसमें 'पारख प्रकाश' के सन 1971 से 1991 तक प्रकाशित 'शंका समाधान' का संकलन किया गया है। कुछ ऐसे प्रश्न जो विभिन्न जिज्ञासुओं द्वारा समय-समय पर पूछे गये, परन्तु जो एक ही विषय पर थे उन्हें एक ही बार रखा गया है

तथा कुछ प्रश्न जो सामयिक विषय पर थे सम्पादन करते समय उन्हें निकाल दिया गया है। इसमें कुल 1111 प्रश्नों के उत्तर हैं।

यद्यपि प्रयास यही किया गया है पुस्तक में पुनरुक्ति दोष न आने पाये, फिर भी यदि पाठकों को कहीं-कहीं पुनरुक्ति जान पड़े तो उन्हें उन विषयों का अभ्यास समझें तथा मधुकरवत गुणग्राही बनें।

कबीर पारख संस्थान, इलाहाबाद विनम्र

श्रावण पूर्णिमा, वि० सं० 2052 **धर्मेन्द्र दास**

सद्गुरवे नमः

प्रश्नोत्तरी

1. प्रश्न—चेतन जीव शरीर से भिन्न और अजर-अमर है, इसका क्या प्रमाण है? और यह अप्रमाणित होने से पुनर्जन्म, कर्म-फल-भोग सब असिद्ध होते हैं।

उत्तर—हम अपनी देशी भाषा में तत्त्वों को चाहे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु नाम दें और चाहे वैज्ञानिकों द्वारा कथित ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, फास्फोरस आदि नाम दें—जिन तत्त्वों से शरीर की रचना हुई है वे सर्वथा जड़ हैं, उनमें चेतना के गुण-धर्म रत्ती भर भी नहीं हैं, यह वैज्ञानिक भी मानते हैं। जिन मूल द्रव्यों में जो गुण-धर्म न हों उनके सम्मिश्रण से वे गुण-धर्म आ जायें, यह सर्वथा असम्भव है। वैशेषिक सूत्रकार कहते हैं—

कारणगुणपूर्वकः कार्य्यगुणोदृष्टः।

(वैशे० अ० 2, आ० 1, सू० 24)

अर्थात—उपादान कारण के सदृश ही कार्य में गुण देखे जाते हैं।

श्रीकृष्णजी भी गीता में कहते हैं कि 'असत्य का अस्तित्व नहीं हो सकता तथा सत्य का अभाव नहीं हो सकता।'

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः॥ गीता 2/16॥

तात्पर्य यह कि जिन जड़ तत्त्वों से शरीर बना है वे नितान्त जड़ हैं, अतएव उनसे बने शरीर में चेतना नहीं आ सकती। शरीर में चेतना है इसका तात्पर्य है कि उसमें चेतना गुण-धर्म वाला चेतन द्रव्य उपस्थित है।

''चेतना या ज्ञान का कोई आकार नहीं, वह शरीर से भिन्न रहकर अपने को प्रदर्शित नहीं कर सकता; इसलिए वह शरीर ही का विकार होगा, उसका आधार कोई स्वतन्त्र चेतन नहीं''—यह शंका अज्ञान से होती है।

शीतत्व और उष्णत्व का क्या आकार है? शरीर में ठण्डी-गरमी लगती है, वह आंख से कहां दिखती है? परन्तु शीतत्व-उष्णत्व रूपी धर्म जिस धर्मी में रहते हैं वे जल-अग्नि के परमाणु भी आंखों से नहीं दिखाई देते। हां, वे अनेक विरोधी तत्त्वों से संयोगवान तथा विकारी हैं, इसलिए उनमें कारण-कार्य होते रहने का प्रवाह है। अत: जब कार्यरूप में उपस्थित होते हैं तब दृष्टिगोचर होते हैं। वायु के कोमल धर्म तथा स्पर्श में भी कहां आकार दिखता है? वायु अत्यन्त घनीभूत होने पर भी वह नेत्र से दृश्यमान नहीं होता, परन्तु अपने गुण-धर्मों से अपना अस्तित्व प्रदर्शित करता है। जब हम जल में गरमी का अनुभव करते हैं तब जल में आग न दिखते हुए भी यह जान लेते हैं कि इस जल में आग मिली है। इसी प्रकार जब हम देखते हैं कि शरीर में चेतना है, ज्ञान है, तब हमें यह अनुभव हो जाता है कि इसमें चेतन जीव निवास करता है।

तार तथा बादल से विद्युत भिन्न वस्तु है, परन्तु बादल या तार का आधार न पाकर विद्युत का प्रत्यक्षीकरण नहीं होता; इसी प्रकार शरीर-मन से चेतन जीव भिन्न वस्तु है, परन्तु शरीर और मन के बिना चेतन का प्रत्यक्षीकरण संसार के सामने नहीं होता। परन्तु इससे यह नहीं सिद्ध होता कि चेतन देह का ही विकार है।

मूल तथा नित्य वस्तु वही है जो दूसरे से सर्वथा विलक्षण हो। चेतन इसी प्रकार है। चेतन का लक्षण किसी भौतिक तत्त्व में नहीं है, अतएव वह सर्वथा विलक्षण है। विलक्षण होने के नाते ही वह नित्य है।

जड़ से चेतन की उत्पत्ति असम्भव है और चेतन से जड़ की भी उत्पत्ति असम्भव है; क्योंकि दोनों के लक्षण विरोधी हैं और दोनों का अस्तित्व प्रत्यक्ष है। फिर केवल जड़ ही का नित्य अस्तित्व है चेतन का नहीं, यह मानना अज्ञान है। प्रकृति-पुरुष, जड़-चेतन, दृश्य-द्रष्टा, देह-जीव, भोग-भोक्ता—सर्वथा भिन्न हैं।

किसी की सत्ता स्वीकार-अस्वीकार करने वाला; जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति का द्रष्टा, समस्त जड़-पदार्थों का ज्ञाता यह परम और नित्य सत्य चेतन जीव ही है।

न हि कश्चित् सन्दिग्धे ऽहं वा न ऽहं वा इति। (भामती)

अर्थात किसी को यह सन्देह नहीं होता कि मैं हूं या नहीं हूं।

प्रिंसपल्स आफ फिलॉसफी (Principles of philosophy) में डेकार्ट (Descartes) ने कहा है—

I think therefore I am.

'मैं सोचता हूं, सन्देह करता हूं, इसलिए मैं हूं।'

जो सबको जानता है वह अपने आपको ठीक से नहीं जानता यही दुख की बात है। सद्गुरु कबीर कहते हैं—

आपन पौ आपुहि बिसरयो। (बीजक, शब्द 76)

जब जीव प्रकृति से भिन्न और सत्य है, तब पुनर्जन्म, कर्म-फल-भोग तथा बन्ध-मोक्ष स्वयमेव सिद्ध हैं। न जड़ की अन्तिम इकाई का नाश होता है और न चेतन का नाश होता है। पानी सूर्य की गरमी तथा वायु द्वारा बिखरकर आकाश में जाता है और लुप्त-जैसा हो जाता है, परन्तु वह नष्ट नहीं होता, वही समय से बादल बनकर वृष्टि के रूप में हमारे सामने आता है। जड़ तत्त्व की अन्तिम इकाई जो न नेत्र द्वारा देखी जा सकती है और न किसी सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा ही, उसका भी नाश नहीं होता। यदि उसका नाश हो जाये तो संसार ही शून्य हो जाये। जो है वह नष्ट कैसे हो जायेगा? अतएव जड़-चेतन दोनों नित्य हैं। जड़ अपने स्वभावानुसार निरन्तर गतिशील है और चेतन वासना-वश पुनर्जन्म के चक्कर में घूम रहे हैं।

एक ही माता-पिता से एक ही स्थिति में जन्में हुए बच्चों के गुण, कर्म, बुद्धि, स्वास्थ्य आदि में अन्तर क्यों होता है? यह सब पूर्वजन्मों की ही देन है।

वही पानी सूखता है, वही पुनः बरसता है और पुनः सूखता है। वही पर्वत घिस-घिस कर नदी में होता हुआ समुद्र को जाता है और तह पर तह जमता हुआ पुनः पर्वत बनता है और पुनः घिसता है। वे ही चांद-सूर्य-तारे रोज दिखाई देते हैं और नेत्रों से ओझल हो जाते हैं। इसी प्रकार वे ही जीव जन्म लेते अर्थात देह धारण करते हैं और पुनः छोड़ते हैं, पुनः देह धरते तथा छोड़ते हैं। संसार में कुछ मिट नहीं जाता और कुछ नया नहीं बनता। सब वही के वही रहते हैं।

पाप-पुण्य कर्मों के फल आज तो लगते ही हैं, परन्तु वे आज ही समाप्त नहीं हो जाते। उनके संस्कार जन्मान्तर में भी रहते हैं और फलित होते हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण नाना गुण-कर्म और भोगों के संयुक्त संसार के प्राणी स्वयं हैं।

मनोमय बड़ा विलक्षण यन्त्र है। इसमें सब संस्कार संग्रहीत रहते हैं और वे अविनाशी जीव के साथ लगे रहते हैं। इनका नाश तभी सम्भव है जब जीव अपने स्वरूप को ठीक से समझकर जड़-वासनाओं की निवृत्ति करे और स्व-स्वरूप में स्थित हो जाये।

2. प्रश्न—शब्दादि विषय दृश्य, जड़, इदम हैं अतः वे अहम या परमतत्त्व नहीं हो सकते। फिर कहा गया है कि बोलता को ही परमतत्त्व समझो, तो बोलता शब्द जड़ है, वह परमतत्त्व कैसा? अतः परमतत्त्व का क्या स्वरूप है?

उत्तर—शब्द अवश्य जड़, इदम तथा दृश्य है, वह परमतत्त्व नहीं, परन्तु जो शब्द प्राणी के मुख से निकलता है वह चेतन की प्रेरणा से निकलता है, इसलिए साधारण लोगों को समझाने के लिए कहा गया 'बोलता को ही परमतत्त्व समझो।'

जो परमतत्त्व को खोजता है, वही परमतत्त्व है, परमात्मा की जिज्ञासा करने वाला ही परमात्मा है, जो मुक्ति चाहता है वही वास्तविक स्वरूप से मुक्त है। 'मैं' ही परमतत्त्व है, उसका शब्दादि विकारी विषयों से सम्बन्ध नहीं; परन्तु प्रकृति-सम्बद्ध तथा शरीरयुत होने से वही बोलता है ऐसा कहा जाता है। वास्तव में 'मैं' की प्रेरणा से ही ओष्ठ, तालू, दन्त में क्रिया होकर शब्दों का ध्वनन होता है। शब्द या वाक्य परमतत्त्व नहीं है, किन्तु जिसकी प्रेरणा से शब्द अर्थात वाक्य निकलता है वह परमतत्त्व है। सद्गुरु कबीर कहते हैं—

जब लग बोला तब लग ढोला, तौ लौं धन ब्यौहार ।
ढोला फूटा बोला गया, कोइ न झाँके द्वार ॥

(बीजक, साखी 293)

अर्थात जिसकी प्रेरणा से बोल निकलती है वह बोलता चेतन जब तक शरीर में है तब तक शरीर-ढोल बजता है और धनादि का व्यवहार होता है। जब शरीर ढोला फूट गया और बोलता चेतन शरीर से निकल गया, तब कोई इस शरीर की इज्जत करने वाला नहीं।

उपनिषद् कहती है—

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥

(केन उपनिषद्, खण्ड 1, मंत्र 4)

अर्थात जो वाणी के द्वारा नहीं बताया गया है बल्कि जिससे वाणी बोली जाती है, उसको ही तू ब्रह्म जान। वाणी के द्वारा बताने में आने वाले जिस तत्त्व की लोग उपासना करते हैं वह ब्रह्म नहीं है।

सद्गुरु कबीर ने भी कहा—

जिभ्या पर आवै नहीं, निरखि परखि करि लेह।

(बीजक, साखी 35)

परमतत्त्व जिह्वा पर नहीं आता, उसे ज्ञान द्वारा परखो। सार यह है कि आप जिनको परखेंगे, जानेंगे, वह सब दृश्य, जड़, इदम होगा, और परखने वाला, जानने वाला ही अहम एवं परमतत्त्व होगा।

शरीर सम्बन्ध में चेतन बोलता है, ज्ञाता है, द्रष्टा है, अन्यथा प्रकृति सम्बन्ध से रहित शुद्ध स्वरूप से वह बोलता, द्रष्टा, ज्ञाता भी नहीं, अपितु निर्विकार चेतन है। वही मेरा अर्थात परमतत्त्व का वास्तविक स्वरूप है।

3. प्रश्न—एक ओर आप जीव को ही सब कुछ मानते हैं दूसरी ओर स्वभाव को भी अनादि कहते हैं तो जीव को न मानकर स्वभाव को ही क्यों न मान लिया जाये?

उत्तर—जड़-चेतन दो पदार्थ अत्यन्त स्पष्ट हैं। चेतन से जड़ की उत्पत्ति असम्भव है तथा जड़ से चेतन की उत्पत्ति भी असम्भव है; क्योंकि कारण के विरोधी गुण-धर्म कार्य में नहीं आ सकते। चेतन को ही जीव, आत्मा, ईश्वर, ब्रह्म, राम, रहीम कुछ भी कह सकते हैं। चेतन ही देह सम्बन्ध में द्रष्टा, भोक्ता तथा ज्ञाता है और जड़ दृश्य, भोग्य तथा ज्ञेय है। ये दोनों एक कभी नहीं हो सकते। अतएव जीव को न मानकर स्वभाव को ही सब कुछ कैसे मान लें।

चेतन अपने ज्ञान-स्वभाव में पूर्ण है तथा जड़ अपने जड़त्व स्वभाव में पूर्ण है। दोनों अपने-अपने क्षेत्र में अत्यन्त शक्तिशाली हैं।

जो जीव सबको जानता-मानता है उसको न मानने का प्रसंग ही नहीं आता। मेरे मुख में जिह्वा नहीं, मेरा पिता बालब्रह्मचारी है, केशव अपने कंधे पर चढ़कर नाचता था—ये वाक्य जैसे व्याघात दोषपूर्ण हैं, वैसे जीव को न मानने की बात है। जो सबको मानता है उसके अस्तित्व में सन्देह कहां!

4. प्रश्न—चेतन स्वत: पूर्णकाम तथा मंगलमय है तो यह अज्ञान का परदा कैसे? शोक-मोह क्यों? यह दुख किसने पैदा किया?

उत्तर—दुख, क्लेश, अज्ञान का परदा प्रत्यक्ष है, इसका अपलाप नहीं किया जा सकता। परन्तु ज्ञान, विवेक, वैराग्य के पुरुषार्थ से इनका मूलोच्छेदन किया जा सकता है। द्रष्टा चेतन अपने अज्ञानवश प्रकृति की ओर आकर्षित होता है इसी से इसे नाना कष्ट होते हैं। यदि यह अपने मूल दिव्य स्वरूप को समझकर प्रकृति के मोह से विरत हो जाये तो इसके सारे कष्ट दूर हो जायें। बीड़ी, सिगरेट या जिस विषय को भोगने की हमारी आदत बनी है उसी में हम सुखी-दुखी होते हैं, परन्तु जिस विषय-भोग की आदत हमारे में नहीं है, उससे हम सर्वथा मुक्त हैं।

इस निरर्थक उधेड़बुन में पड़ने की आवश्यकता नहीं है कि अज्ञान, दुख तथा शोक-मोह कब से और कैसे हैं? अपितु यह सोचना है कि इनका सर्वथा विनाश कैसे हो। वैसे अज्ञान तथा दुख अनादि ही मानना पड़ेगा। प्रश्न हो सकता है कि अनादि वस्तु मिटती नहीं, परन्तु कुछ ऐसी भी वस्तु है जो अनादि

होने पर भी मिट सकती है। जो मूलत: अनादि है वह नहीं मिटती और जो प्रवाह रूप अनादि हैं उनमें किसी-किसी वस्तु को मिटते देखा जाता है, जैसे बीज-वृक्ष प्रवाह रूप अनादि हैं, परन्तु जिस बीज को आग में भून दिया जाये उससे वृक्ष नहीं उग सकता। इसी प्रकार अज्ञान-बन्धन अनादि होने पर भी ज्ञान-वैराग्य द्वारा उनका सर्वथा उपशमन हो सकता है। दृश्य से उपरत होकर स्वत: द्रष्टा स्वरूप में अवस्थित होने पर अज्ञान तथा दुखों का अन्त है।

5. प्रश्न—गर्भ में मेरे शरीर को किसने बनाया? यदि मैंने बनाया तो अब उसे क्यों भूल गया?

उत्तर—गर्भ में शरीर बनने का अनादि नियम है। जीव का स्थूल शरीर तो छूट जाता है; परन्तु सूक्ष्म शरीर उसके साथ रहता है, जो मनोमय है। उसी में अनादिकाल से चारों खानियों के संस्कार चित्रित हैं। समय आने पर योग्यतानुसार शरीर का निर्माण स्वयं होता है। उसे कोई दूसरा बनाता नहीं।

वृक्षों में पत्तियां तथा पत्तियों में नसें कौन बनाता है? दर्पण में परछाई, मोरपंख में नक्काश कौन बनाता है? वे केवल अनादि नियम से बन जाते हैं।

गोस्वामी श्री तुलसीदासजी विनय-पत्रिका में लिखते हैं—

असन, बसन, पसु बस्तु बिबिध बिधि, सब मनि महँ रह जैसे।
सरग, नरक, चर, अचर लोक बहु, बसत मध्य मन तैसे॥
बिटप-मध्य पूतरिका, सूतमहँ कंचुकि, बिनहिं बनाये।
मन महँ तथा लीन नाना तनु, प्रगटत अवसर पाये॥

(विनयपत्रिका, पद 124)

अर्थ—एक मणि में भोजन, वस्त्र, पशु तथा विविध वस्तुएं भरी हैं। अर्थात एक मणि भुना लो और ये सब वस्तुएं खरीद लो। इसी प्रकार स्वर्ग-नरक तथा चर-अचर लोक सब मन में समाये हैं। अर्थात मन में निहित बीज-वासनानुसार जीव संसार में भटकता है। पेड़ में पुतली (मूर्ति) तथा सूत में कपड़ा बिना बनाये ही स्थित हैं। पेड़ को काटकर गढ़-छील देने पर पुतली बन जाती है और सूत को ताना-बाना के रूप में व्यवस्थित कर देने पर कपड़ा बन जाता है। इसी प्रकार अनादिकाल से जीव सभी खानियों में असंख्य बार गया है, अत: उनके संस्कार—बीज-वासना मन में चित्रित हैं। समय पाकर उन संस्कारों द्वारा शरीर का निर्माण स्वत: हो जाता है।

आंखों के ऊपर पलक लगने की बात जानबूझ करके नहीं करनी पड़ती है। अनादिकाल से आंखों पर पलकें हैं, अत: उनका निर्माण शरीर के साथ स्वत: होता है।

जब किसान खेत में बीज डालकर चला जाता है, तब पुनः वह उन बीजों को फोड़कर अंकुर निकालने नहीं आता। जल-मृत्तिका तथा अपनी पूरी योग्यता पाकर बीज में अंकुर स्वतः निकलते हैं और उनमें स्वतः पत्तियां आदि आती हैं। जब हम सोने चलते हैं, तब यह नहीं जानते हैं कि अमुक स्वप्न, अमुक प्रकार देखेंगे। जो पूर्व में देखा, सुना तथा भोगा है (चाहे उसका ख्याल हमें न हो परन्तु उसका गुप्त अध्यास मन में है) उसका स्वप्न अपने आप सोते समय आ जाता है।

इसी प्रकार अनादि नियम-कर्म स्वभावानुसार जीव जब गर्भ में जाता है, तब कर्म संस्कारानुसार स्वतः शरीर बनने लगता है। जीव को बनाना नहीं पड़ता। आम के बीज का जल-मृत्तिकादि से संयोग होने पर उसमें से आम के वृक्ष, पत्ते तथा फल-फूल होते हैं। कटहल के बीज से कटहल के वृक्ष, पत्ते, फल-फूलादि होते हैं। इसी प्रकार जीव के जैसे कर्म-संस्कार होते हैं, रज-वीर्य का सम्बन्ध पाकर सूक्ष्म-शरीर द्वारा रज-वीर्य से शरीर बनने लगता है और उसी प्रकार बनकर तैयार हो जाता है।

यदि यह मानें कि कोई ईश्वर होगा वही बनाता होगा, तो जिस ईश्वर को लोग सर्वत्र, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान तथा दयालु भी कहते हैं, क्या वह संसार में पाप और पीड़ा रहने देता! सर्वशक्तिमान होने से वह जीवों की बुद्धि तो बदल ही सकता है। यदि आपको ईश्वरत्व मिला होता, तो क्या आप संसार में पाप और पीड़ा रहने देते। जब हमारे महर्षिगण चाहते हैं कि 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' अर्थात सब सुखी हों, तब जो सर्वशक्तिमान है, वह कैसे नहीं चाहता? और यदि वह चाहता है तो उसकी चाहना की पूर्ति कैसे नहीं होती?

6. प्रश्न—पुरुष के वीर्य में शुक्र होते हैं, उन्हीं से गर्भ रहता है। ये जीवधारी हैं, इनमें भी नर-मादा होते हैं। ये भी आपस में सम्भोग करते होंगे, तो उनके भी रज और वीर्य में जीवाणु होते होंगे, क्योंकि वे भी जीवधारी हैं। इस प्रकार विचार करने पर यह शृंखला बहुत दूर तक जाती है। तो ऐसी दशा में उन जीवाणुओं में से किसको माना जाय कि इस जीवाणु का चेतन गर्भ में रहकर पिंड बना रहा है?

उत्तर—पुरुष के शुक्र में कुछ भिन्न ग्रंथि-कणों को नर-मादा मानना विज्ञान की अपनी एक अलग नर-मादा की परिभाषा है। उनके द्वारा भी सम्भोग मानना और पुनः उनमें भी जीवाणु की अगणित शृंखला मानना एक कल्पना है।

चाहे शुक्र में कितने ही जीव मानें, परन्तु शरीर तो एक ही जीव द्वारा बनता है। 'अब वह कौन जीव है?' तो जीवों का जीव या चेतन छोड़कर अन्य नाम तो हो सकते हैं, परन्तु उनकी कोई दूसरी जाति नहीं हो सकती। अतएव

किसी एक जीव द्वारा गर्भ में शरीर बनता है और उसके पैदा होने पर उस शरीर में एक ही जीव प्रतीत होता है।

अगणित चेतन जीव अविनाशी हैं और जड़ से पृथक हैं। जल में अग्नि के परमाणु मिले रहते हैं; किन्तु अग्नि के परमाणु जल नहीं हो जाते। इसी प्रकार जीव कहीं भी रहे, वह चेतन ही रहेगा और उसका अस्तित्व सबसे पृथक ही रहेगा। प्रत्यक्ष जीव शरीर धारण करता है और कर्म-वश सुख-दुख भोगता है। पवित्र कर्मों से प्रत्यक्ष सुख होता है और अपवित्र कर्मों से दुख होता है। यह जानकर पवित्र कर्म करने चाहिए।

* * *

7. प्रश्न—संसार में हिन्दू-धर्म ही कहता है कि मांस खाना पाप है और मांसाहार छोड़ देने से मुक्ति है। संसार के नब्बे प्रतिशत लोग मांस खाते हैं, शेष दस प्रतिशत शाकाहारी होंगे, तो क्या इसी दस प्रतिशत का कल्याण होगा?

उत्तर—हिन्दू-धर्म यह बताता है कि मांसाहार पाप है यह बात ठीक है, परन्तु इसलामी, इसाई, यहूदी, पारसी आदि यह नहीं बताते कि मांसाहार पुण्य है। संसार के समस्त धर्मों के आचार्यों में से मांसाहार को किसी ने उत्तम नहीं कहा है। इन पंक्तियों के लेखक ने जिन इसलामी तथा इसाई बन्धुओं से बातचीत की, वे सभी मांसाहार का समर्थन करते हुए नहीं मिले।

धर्म की परिधि से जो लोग पृथक हैं, वे भी ठण्डे दिल से विचार करेंगे तो उनको भी यही प्रतीत होगा कि मांसाहार करना मानवता नहीं है। विशेषज्ञों ने बताया है कि मनुष्य की पाचन-प्रणाली मांसाहार के अनुकूल नहीं है। मांस गरिष्ठ होता है, अशुचि होता है तथा रोगमय होता है। 'शरीरं व्याधि मन्दिरम्' के अनुसार तथा प्रत्यक्ष अनुभव से यह जाना जाता है कि प्राणिमात्र के शरीर में कोई-न-कोई रोग रहता है। जिस प्राणी के शरीर का मांस मनुष्य खाता है, उसके रोग भी मांस के साथ मांसाहारी में आते हैं।

किसी रोगी व्यक्ति को वैद्य-डाक्टर यही राय देते हैं कि आप साग-सब्जियों के बागों में, उपवनों में प्रातः-सायं घूमा करें। यह कोई नहीं कहता कि मांस की मण्डियों तथा बूचड़खानों में घूमा करें। अन्न, साग-सब्जी आदि देखने से ही प्रसन्नता उत्पन्न होती है, परन्तु मृत पशु तथा मछली आदि का अपवित्र शव देखकर ही मनुष्य का मन घृणा से भर जाता है। उसे कपड़े आदि में छिपाकर लाता है, कहीं एकांत में बनाता है और उसे खाने के पश्चात भी पात्र, हाथ, मुंह आदि दुर्गन्ध से भरे रहते हैं और उस दुर्गन्ध को दूर करने लिए कितने लोग साबुन, इतर आदि का प्रयोग करते हैं।

जहां मांस की मण्डियां होती हैं वहां का दृश्य कितना भयावह तथा घृणास्पद होता है, परन्तु क्या साग-सब्जियों की मण्डियों में भी ऐसी घृणा-भावना आ सकती है? साग-सब्जियों का बाजार तो मनोरम लगता है। प्रत्येक प्राणी का आहार वही है जिसको देखकर प्रसन्नता से मन भर जाये, परन्तु क्या रुधिर से सने हुए घृणित मांस को देखकर प्रसन्नता आ सकती है?

किसी के घर में जब कोई मर जाता है, लोग उसका घर तक अशुद्ध मानते हैं। बिना शुद्धि हुए उसके घर में कोई भोजन नहीं करता; परन्तु उन्हीं लोगों में से बकरे, मुरगे, मछली आदि को मारकर और उन मुरदों को मुख से चबाकर पेट में भर लेते हैं तो भी वे अपने को अशुद्ध नहीं मानते, क्या यह निरा अविवेक नहीं है?

एक बार जार्ज बर्नाड् शॉ अपने सम्बन्धियों के यहां थे। उनके लिए टेबल पर भोजन की सामग्री सजा दी गयी। जब वे टेबल पर पहुंचे और भोजन देखे तो उसमें मांस भी था। वे चुपचाप बैठे रह गये। घर का स्वामी आकर बोला—''आप भोजन क्यों नहीं करते?'' जार्ज बर्नाड् शॉ तुरन्त बोल पड़े—''माई स्टमक इज़ नाट ए ग्रेवयार्ड दैट आई शैल ईट डेड बॉडीज़'' अर्थात ''मेरा पेट कब्रस्तान नहीं है कि मैं मुरदे खाऊं।''[1]

संसार के जितने प्राकृतिक चिकित्सक हैं, एक स्वर से कहते हैं कि मांस, अण्डा, मछली, शराब, ताड़ी, गांजा, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट अर्थात मांस-नशा की सभी वस्तुएं मानव प्रकृति के सर्वथा विपरीत हैं। और वे केवल कहते ही नहीं हैं प्रत्युत आचरण करते हैं। अमेरिका, इंग्लैण्ड आदि के भी प्राकृतिक चिकित्सालयों में मांस, अण्डा, मछली तथा नशीले पदार्थों का सर्वथा वर्जन है।

इसाई धर्मावलम्बी प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक एडोल्फ जस्ट् ने 'रिटर्न टु नेचर' में मांसाहार का सविस्तार खण्डन किया है। इसका अधिकांश हिन्दी अनुवाद मैंने अपनी बीजक व्याख्या के सैतालीसवें शब्द में दिया है। यहां केवल कुछ पंक्तियां दी जा रही हैं—

''प्रकृति के प्रांगण की ओर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि केवल मांस खाने वाले प्राणी हत्या करते हैं। प्रकृति मांसाहारी में हत्या की इच्छा प्रतिष्ठित करती है। मनुष्य ने अपने पतन के बाद पहला या यों कहिये कि एक ही बुरा काम किया था, वह था हत्या—भातृ-हत्या। इसका अर्थ यही है कि मनुष्य के पतन का कारण मांसाहार है अन्यथा हत्या का यहां कोई अर्थ नहीं है।

---

1. **My stomach is not a graveyard that I shall eat dead bodies.**

ऐसी स्थिति में ईसा मांस कैसे खा सकते थे। ईसा सबसे अधिक मृदुता और दया की शिक्षा देते थे। तो क्या उन्होंने अपनी आत्मा और ईश्वर की आवाज के विरुद्ध मनुष्य को राक्षस बनाने वाला पशु-मांस खाया होगा, जिसे जबह करने में दया को एकबारगी तिलांजलि दे देनी पड़ती है। यह कार्य ईसा की दया का विरोधी होता, वह हत्या के पाप से मुक्त नहीं हो सकते थे। भला, ईसा शरीर और आत्मा को रुग्ण बनाने वाले, पाप और दोष में फंसाने वाले मांस को स्वीकार कर सकते थे?

तौरेत के अनुवाद में की गयी गलती के समान ही बाइबिल के अनुवाद में भी गलती मिलती है। प्राचीन समय में लोग मांस खाने के पाप के प्रायश्चितस्वरूप देवताओं की शान्ति के लिए पशु बलि दिया करते थे। इतिहासकारों का कहना है कि एसेन जाति के लोग जिनसे ईसा सम्बद्ध थे, पशु-बलि नहीं देते थे। इससे यह आसानी से समझा जा सकता है कि वे मांस भी नहीं खाते थे। धर्मशास्त्रियों की भी यही मान्यता है।

इसको इस तरह भी कह सकते हैं कि वे लोग पशु की बलि नहीं चढ़ाते थे, मांस नहीं खाते थे, ईसा और उनके शिष्यों ने कभी कोई बलि नहीं दी। उन्होंने तो पशु-बलि का निषेध भी किया है—

''मुझे दया चाहिए, बलि नहीं।''

लोग बकरियों, मुरगियों, भेड़ों को पालते हैं। उन्हें गोद में खेलाते, चूमते और प्यार करते हैं; परन्तु अपनी जिह्वा के स्वाद में पड़कर वे ही लोग उन मूक, निरीह पशु-पक्षियों के ऊपर छूरी चलाते हैं। क्या ऐसे लोग मानव कहला सकते हैं? आपकी उंगुलियों को कोई तोड़े, आंखें फोड़े तथा शरीर में सुई चुभोये तो आपको कितनी पीड़ा होगी, इसका आप सहज अनुमान कर सकते हैं। क्या इसी प्रकार दूसरों की पीड़ा आप नहीं समझ सकते? अपने तुच्छ जिह्वा-स्वाद के लिए क्या दूसरे को पीड़ा देना उपयुक्त है।

लोग कहते हैं ''मांस में प्रोटीन विशेष होता है।'' वास्तव में जो प्रोटीन या विटामिन (जीवन सत्व) साग-सब्जियों में होता है वह मांस में हो नहीं सकता। पशु साग-सब्जियों द्वारा विटामिन प्राप्त करते हैं और मनुष्य उसे विकृत रूप में पशु के मांस द्वारा प्राप्त करने की चेष्टा करता है। क्या ही अच्छा होता मनुष्य विटामिन प्राकृतिक रूप से साग-सब्जियों द्वारा ही प्राप्त करता।

आजकल प्रोटीन या विटामिन का बड़ा मोह है। आजकल प्राय: पढ़े-लिखे लोग दाल-भात-रोटी-साग आदि नहीं खाते, अपितु विटामिन खाते हैं। उन्हें कह दिया जाये कि अन्न की अपेक्षा भूसा में अधिक विटामिन होता है तो सम्भवत: वे अन्न को छोड़कर भूसा ही खाने लग जायें।

प्रोटीन या विटामिन कितना ही खाया जाये, परन्तु जब तक उसकी रक्षा नहीं की जायेगी, खाने का कोई फल नहीं है। आज का विमोहित मानव प्रोटीन या विटामिन के मोह में पड़ा हुआ अण्डा-मांस-मछली आदि सभी अभक्ष्यों का सेवन करता है, परन्तु प्रोटीन या विटामिन का जो सारभूत तत्त्व वीर्य है उसकी रक्षा करने का किंचित ध्यान नहीं है। जब तक ब्रह्मचर्य का पालन नहीं किया जायेगा, सैकड़ों विटामिन वाली वस्तुओं को खाने का फल शून्य ही होगा और ब्रह्मचर्य पालन करने वाले व्यक्ति के लिए सामान्य आहार से ही पर्याप्त शक्ति संचित हो जाती है।

यह ठीक है कि संसार के सभी लोग पूर्ण ब्रह्मचारी नहीं हो सकते, परन्तु गृहस्थी में रहकर जितना सम्भव हो सकता है उतना तो करना ही चाहिए। गृहस्थ को केवल सन्तान के लिए ब्रह्मचर्य का स्खलन करना उचित कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त उसको भी हर समय ब्रह्मचारी[1] रहना चाहिए। यहां का मुख्य विषय तो यह है कि प्रोटीन या विटामिन के मोह में पड़कर मांस आदि अभक्ष्य का सेवन नहीं करना चाहिए, प्रत्युत विटामिन की रक्षा करनी चाहिए। अर्थात वीर्य की रक्षा करनी चाहिए।

इस प्रकार केवल हिन्दू ही मांसाहार को बुरा कहते हों, ऐसी बात नहीं। विश्व के सभी देश, जाति तथा संप्रदाय के समझदार लोग मांसाहार को उचित नहीं कहते, प्रत्युत घृणा की दृष्टि से देखते हैं। अब रही यह बात कि संसार के अधिकतम लोग मांसाहारी ही हैं, शाकाहारी बहुत कम हैं, तो इस तर्क में क्या सार है? क्या जिस काम को संसार के अधिकतम लोग करें वह उचित हो सकता है? क्या यह भी विधान-सभा का चुनाव है, जिसमें बहुमत से विजय मिलती है? संसार में पूर्ण सत्यवादी अत्यन्त कम हैं, तो क्या इसी से सत्य की अप्रतिष्ठा तथा असत्य की प्रतिष्ठा हो जायेगी? पत्थरों के विशाल पर्वत होते हैं और हीरे कहीं-कहीं मिलते हैं, परन्तु जो मूल्य हीरे का है, क्या पत्थर का हो सकता है?

''क्या मोक्ष या कल्याण मांस न खाने वाले को ही मिलेगा?'' तो भाई, केवल मांसाहार का त्याग ही मोक्ष का पूर्ण साधन नहीं है। वह तो एक साधन है। मांसाहार के त्याग के साथ-साथ शम-दम, विवेक-वैराग्य आदि मुख्य साधनों की आवश्यकता है। पहले तो मनुष्य हिंस पशु-स्वभाव प्रिय मांसाहार आदि अभक्ष्य का त्याग करे और मनुष्य के गुण धारण करे, फिर वह अन्य मोक्ष-साधनों को भी प्राप्त कर सकेगा।

---

1. **'ब्रह्मचर्य जीवन' नाम की पुस्तक पढ़ें, कबीर संस्थान इलाहाबाद से प्रकाशित है।**

आत्म-कल्याण के लिए मांसाहार जैसी घृणित वस्तु का सर्वथा त्याग करना ही पड़ेगा। जो मांसाहार जैसा घिनौना व्यवहार भी नहीं छोड़ सकता, उसको अपने कल्याण की आशा करना व्यर्थ ही है।

* * *

8. प्रश्न—संचित कैसे बच रहता है?

उत्तर—कर्म-भूमिका मनुष्य-शरीर है। मनुष्य-शरीर में जितने कर्म बन जाते हैं, वे बहुत होते हैं। शरीर छूटने पर कुछ ही कर्मों के भोगने योग्य अगला शरीर बनता है। दो-चार पशु आदि शरीरों के धरने के बाद यदि जीव किसी कर्म-संस्कारवश पुनः मनुष्य शरीर में आ गया तो कुछ अभुक्त कर्म संचित रूप में रह जाते हैं। किसान ने फसल काटकर अन्न घर में रख लिया। अगली फसल तैयार हो गयी और पहले का अन्न अभी सब खाकर समाप्त नहीं हुआ तो संचित रहेगा ही। रहा, अनादिकाल से जो विषयों की वासनाएं तथा देहासक्ति है, यही मुख्य संचित है। यह सब जीव के पास है, यही मुख्य बन्धन है। इसके मिट जाने पर जीव सभी प्रकार के कर्मों से मुक्त हो जाता है। संचित, प्रारब्ध, क्रियमाण कर्म, जीवन्मुक्ति-विदेहमुक्ति आदि को समझने के लिए 'कबीर दर्शन' तथा 'रहनि प्रबोधिनी सटीक' पढ़ना चाहिए।

9. प्रश्न—'जहिया जन्म मुक्ता हता.....।' जब जीव कभी मुक्त था, तो बन्धन में कैसे आया?

उत्तर—जीव का शुद्ध स्वरूप मुक्त रूप अवश्य है; परन्तु देह बन्धन से जीव कभी मुक्त नहीं था। बन्धन अनादि है। 'जहिया जन्म मुक्ता हता।' की साफ व्याख्या 'बीजक पारख प्रबोधिनी व्याख्या' में देखें।

10. प्रश्न—यह हम कैसे जानें कि अमुक जीव मुक्त हो चुका है?

उत्तर—दूसरे मुक्तों को जानने का तरीका है अपने को मुक्त करना। जो जीते जी सब विषयों से अपनी मुक्ति कर लेता है, वह विदेहमुक्ति को समझ लेता है, जो विदेहमुक्ति को समझ लेता है, वह अन्य मुक्तों के लक्षणों को भी अपनी स्थिति से जान लेता है। रसगुल्ला कैसा होता है, यह स्वयं खाने से पता चलेगा।

11. प्रश्न—जीव निराकार है कि साकार? साकार है तो क्या आकार है?

उत्तर—निराकार का अर्थ शून्य होता है। जीव शून्य नहीं, अतः निराकार नहीं। जड़ तत्त्वों के समान वह स्थूल आकार वाला भी नहीं। जीव वस्तु है,

भाव है, तो द्रव्य अवश्य है; क्योंकि द्रव्य में ही गुण रहता है और जीव में ज्ञान गुण है। अत: जीव का आकार अवश्य हुआ, भले वह अदृश्य है। जब जड़ तत्त्व वायु तक अदृश्य है तब जीव के अदृश्य होने में आश्चर्य क्या? अतएव जीव का ज्ञान ही आकार है, ज्ञान ही गुण है।

12. प्रश्न—एक जीव दूसरे को क्यों नहीं देखता?

उत्तर—जीव अदृश्य है वह दृश्य कैसे होगा, तुम जड़ नेत्र से ही तो जड़ रूप-विषय को देखते हो। जीव की तो बात ही छोड़ो, तुम शब्द, स्वाद, स्पर्श और गन्ध ही को नहीं देख पाते हो।

13. प्रश्न—मुक्त जीव चलता है कि अचल है?

उत्तर—मुक्ति अवस्था में चंचलता का प्रश्न ही समाप्त है। मुक्त जीव अपने स्वरूप में ही अवस्थित रहता है। उसकी जड़-प्रकृति से सर्वथा निवृत्ति हो जाती है। इसको विस्तार से समझने के लिए 'रहनि प्रबोधिनी' टीका पढ़ना उपयुक्त रहेगा। फिर साक्षात्कार होने पर सारे सन्देह समाप्त हो जायेंगे।

14. प्रश्न—आत्मा अमर है तथा परमात्मा का सम्बन्ध?

उत्तर—आत्मा अमर है ही, परमात्मा नाम की वस्तु आत्मा से अलग नहीं। जब आत्मा महात्मा हो जाता है तब वही परमात्मा हो जाता है। महात्मा का अर्थ निर्मलात्मा है।

15. प्रश्न—आत्मा शरीर से अलग होने पर शरीर द्वारा किये गये पापों का प्रायश्चित करता है कि नहीं?

उत्तर—शरीर में रहते हुए तो प्रायश्चित कर सकता है, परन्तु शरीर से निकलकर प्रायश्चित करने का कोई आधार नहीं, क्योंकि शरीर छूट जाने पर जीव के साथ केवल वासनामय सूक्ष्म शरीर ही रहता है, वहां सोचने-विचारने का साधन नहीं रहता। हां, अपने किये गये कर्मों का फल शरीर छूट जाने पर जीव दूसरा शरीर धारणकर अवश्य भोगता है।

16. प्रश्न—वैराग्य परम सुखरूप है, यदि संसार के समस्त नर-नारी वैराग्य-सुख की प्राप्ति के लिए विरक्त हो जायें तो सृष्टि का अन्त हो जायेगा?

उत्तर—यदि सबके विरक्त हो जाने से सृष्टि रुक जाये तो क्या हानि है? जब हानि नहीं तो चिंता बेकार है। जब सब लोग मोटे-मोटे दोष नहीं छोड़ पाते तब सब वैराग्य धारण कर लेंगे और इस कारण सृष्टि का अन्त हो जायेगा—यह बात सोची भी नहीं जा सकती। सहस्रों में कोई एक सच्चा

वैराग्य धारण करता है और जीव असंख्य हैं। सृष्टि कब रुकने वाली है? हम अपना कल्याण करें, सृष्टि रुकने की चिन्ता छोड़ दें।

17. प्रश्न—मोक्ष क्या है, उसका अनुभव हम कैसे प्राप्त कर सकते हैं? यदि अनुभव नहीं हो सकता है तो फिर ऐसे मोक्ष के लिए हम क्यों परेशान हैं? अपना लक्ष्य केवल यह बनायें कि हम वही दूसरे के लिए करें जो अपने लिए दूसरों द्वारा चाहते हैं। वह भी ब्रह्मचर्य के साथ।

उत्तर—मोक्ष में दो वर्ण हैं, 'म' और 'क्ष'। 'मो' से मोह तथा 'क्ष' से क्षय—इस प्रकार मोह का क्षय ही मोक्ष है। जब मनुष्य को स्वरूपज्ञान (आत्मज्ञान) हो जाता है और वह अपने चेतन स्वरूप से पृथक पदार्थों की आसक्ति का सर्वथा त्याग कर देता है, तब वह स्वरूपस्थ हो जाता है इसी को मोक्ष कहते हैं। समस्त आसक्तियों, विकारों, मनोमालिन्यताओं का अन्त ही मोक्ष है। सद्गुरु कबीर ने कहा है—

जियत न तरेउ मुये का तरिहो, जियतहि जो न तरै॥

(बीजक, शब्द 14)

शरीर के रहते ही सर्व आसक्तियों का ध्वंस मोक्ष है। प्रश्न होता है कि मोक्ष का अनुभव हम कैसे प्राप्त कर सकते हैं? उसके लिए ऊपर की बात पुनः दोहराई जायेगी। अर्थात गुरु-सन्तों से स्वरूपज्ञान प्राप्त करें और शरीरादि जड़ पदार्थों की आसक्ति का त्याग करें। जिस दिन मन कामादि विकारों तथा राग-द्वेषादि से सर्वथा शून्य होगा उस दिन मोक्ष का अनुभव अपने आप होगा। इसके लिए भक्ति, सत्संग, वैराग्य, बोध, साधना सबकी आवश्यकता है।

प्रश्न है ''यदि मोक्ष का अनुभव नहीं होता तो हम क्यों परेशान हैं?'' आप यह कैसे जाने कि किसी को मोक्ष का अनुभव नहीं होता। कक्षा 1 का बच्चा कहे कि बी० ए०, एम० ए० के कोर्स के विषय बिलकुल निरर्थक हैं या उनका ज्ञान होना असम्भव है, तो यह उसका कहना कहां तक उचित है!

''दूसरे के लिए हम वही करें, जो दूसरे से अपने लिए चाहते हैं, वह भी ब्रह्मचर्यपूर्वक।'' यह तो बहुत बढ़िया बात है। मोक्ष की साधना में भी हमें इस बात की आवश्यकता है ही। जो मोक्ष साधना करना चाहेगा, वह अपने वैरी का भी अनिष्ट क्यों चाहेगा, सबका हित सोचना, जहां तक सम्भव हो हित करना—यह प्रत्येक मानव का परम पुनीत कर्तव्य है।

ब्रह्मचर्य का पालन तो उसके लिए भी आवश्यक है जो समाज की सेवा करना चाहता है और मोक्ष-साधक के लिए तो यह अत्यन्त आवश्यक है ही।

18. प्रश्न—गुरु कौन है तथा गुरु करने से क्या होता है?

उत्तर—किसी विषय की शिक्षा देनेवाला गुरु कहलाता है और गुरु करने से उससे शिक्षा मिलती है।

माता, पिता, अध्यापक तथा किसी विषय का ज्ञान कराने वाले गुरु कहलाते हैं, इस प्रकार जीवन में अनेक गुरु किये जाते हैं; परंतु प्रश्न संभवत: सद्गुरु के लिए है। सद्गुरु वह है जिसकी शिक्षा से सारी भ्रांतियों का अन्त होकर दिव्य ज्ञान का प्रकाश होता है।

19. प्रश्न—गुरु कैसा करना चाहिए?

उत्तर—प्रश्न में सद्गुरु को ही गुरु कहा है। सद्गुरु कैसा करना चाहिए का उत्तर है कि जिसका आचरण पवित्र हो तथा ज्ञान निष्पक्ष, तर्कपूर्ण, अन्धविश्वास से रहित और शुद्ध हो, उस सद्गुरु की शरण लेना चाहिए। काम, क्रोध, मद, मत्सर तथा अनेक अन्धविश्वासों एवं मूढ़ताओं में लिप्त लोग दूसरे को क्या प्रकाश देंगे?

20. प्रश्न—गुरु की आज्ञा न मानने से क्या होता है?

उत्तर—शुद्ध ज्ञान तथा आचरण से सम्पन्न राग-द्वेष से रहित यथार्थ सद्गुरु की ऐसी कोई आज्ञा नहीं होगी जो न मानने योग्य हो, अपितु वह कल्याणकारी ही होगी और ऐसी आज्ञा न मानने वाला गड्ढे में जायेगा।

यदि गुरु में शुद्ध ज्ञान तथा आचरण की सर्वथा पूर्णता नहीं है और वह ऐसी आज्ञा देते हैं जो निष्पक्ष ज्ञान तथा शुद्ध आचरण के विरुद्ध है तो उसे न मानने में ही शिष्य का हित है और गुरु का भी। गुरु की गलत आज्ञा मानकर शिष्य अपना और गुरु, दोनों का अकल्याण ही करेगा। इसलिए कहा है—

जब तक न देखे निज नैना। तब तक न माने गुरु के बैना॥ (पंचग्रंथी)

अर्थात जब तक अपने विवेक में न आवे तब तक गुरु की बात भी ज्यों-की-त्यों न मान ले।

झूठे गुरु के पक्ष को, तजत न कीजै बार।
द्वार न पावै शब्द का, भटके बारम्बार॥
साँचे गुरु के पक्ष में, दीजै मन ठहराय।
चंचल से निश्चल भया, नहिं आवै नहिं जाय॥

(कबीर अमृतवाणी)

21. प्रश्न—गुरु की शरण लेकर गृहस्थी में हमें क्या करना चाहिए?

उत्तर—सद्गुरु के चुनाव में शीघ्रता न करे। खूब समझ-बूझकर यथार्थ सद्गुरु की शरण ले। तन, मन, धन को अर्पित कराने वाले गुरु तो बहुत घूमते हैं, परन्तु वास्तविक गुरु वह है जो निष्काम है।

समय-समय पर सद्गुरु की सेवा करते हुए उनके सत्संग द्वारा अपना बोध-विचार पुष्ट करता रहे। अवैज्ञानिक तथा अन्ध मान्यताओं से दूर रहकर सदाचार से जीवन व्यतीत करे।

22. प्रश्न—कबीरपन्थ में कुछ गद्दीनशीन आचार्य, महन्त या गुरु लोग परस्पर छोटे-बड़े का भेदभाव करते हैं, वह कहां तक ठीक है? प्रसंग सहित समझावें।

उत्तर—ज्ञान और आचरण में सच्चा पुरुष ही महापुरुष है। ऐसे जो भी महापुरुष होते हैं वे समाज के प्रकाशस्तम्भ होते हैं। उनके अनुयायियों में अनेक लोग आ जाते हैं। अच्छे के साथ गलत लोग भी घुस जाते हैं और वे पंथ, समाज व सम्प्रदाय को दूषित कर देते हैं।

सद्गुरु कबीर के ज्ञान, आचरण तथा व्यक्तित्व की प्रशंसा उनके विरोधी भी करते हैं, फिर अन्य को क्या कहना! परन्तु कितने ही कबीरपन्थी कहलाने वाले गद्दीधारी आचार्य, महन्त, गुरु-साधु नामधारियों का हृदय बहुत छोटा है। वे अपनी गद्दी, मठ तथा समाज के उत्तराधिकार में ही सद्गुरु कबीर के उपदेश, मोक्ष तथा शांति की ठेकेदारी समझते हैं, अपने को महान तथा दूसरे को तुच्छ घोषित करने की चेष्टा करते हैं। वे यद्यपि यह उपदेश देते फिरते हैं कि कोई ब्राह्मण के घर में जन्म लेने मात्र से ब्राह्मण और पूज्य नहीं हो सकता जब तक उसमें ब्राह्मण-कर्म न आवें; परन्तु वे स्वयं अमुक गुरु, घेरा, गद्दी, संस्था में दीक्षा ले लेने मात्र से अपने को बड़ा तथा दूसरे को छोटा मानते हैं। क्या ये लोग कबीर साहेब के उदार विचार समझ सके हैं? क्या ये अपने को उदार सन्त कबीर के अनुयायी कहलाने के अधिकारी हैं? हां, जो आचार्य, महन्त, गुरु, साधु, उदार तथा विनम्र हैं, वे धन्य हैं।

परमार्थ में धन, मठ, जनसमूह आदि का महत्त्व नहीं हो सकता, उसमें महत्त्व है त्याग, तप, ज्ञान, वैराग्य, परोपकार, उदार-भावना आदि का। जब तक मनुष्य में ज्ञान-आचरण न आये तब तक वह किसी बड़े गद्दीधारी आचार्य, महन्त एवं जीवन्मुक्त ही से दीक्षित क्यों न हो, दीक्षामात्र लेकर श्रेष्ठ नहीं हो सकता।

गद्दी, महन्ती, मठ, ऐश्वर्य, मान, बड़ाई तथा साम्प्रदायिक भावनाओं से सद्गुरु कबीर अत्यन्त दूर थे, इन समस्त ऐश्वर्यों के अहंकार से सर्वथा मुक्त थे। वे व्यक्ति सोचनीय हैं जो इन्हीं मायावी ऐश्वर्यों के मद को लेकर अपने को

श्रेष्ठ तथा दूसरे को हीन गिनते हैं फिर भी वे अपनी अहंता-ममता का घर जला देने वाले फक्कड़, मस्त, निराले सन्त कबीर साहेब के उपदेशों के ठेकेदार बनते हैं।

न तो कोई कबीरपंथी कहलाने से बड़ा होगा और न तो कबीरपंथ अन्तर्गत अमुक गद्दी, आचार्य, महंत तथा गुरु-साधु का अनुगामी तथा शिष्य कहलाने से बड़ा होगा। बड़ा वही होगा जो निराले सन्त कबीर के पारदर्शी ज्ञान तथा दिव्य आचरणों को धारण करेगा, जो केवल कबीर साहेब की भी व्यक्तिगत वस्तु नहीं है, अपितु सनातन सत्य है।

विज्ञानी वही वस्तु खोजकर निकालता है जो प्रकृति के गर्भ में छिपी है, इसी प्रकार सद्गुरु कबीर ने भी वही वस्तु संसार के सामने रखी है जो अटल सत्य और नित्य है। इसीलिए वह वस्तु सबकी है चाहे कबीरपंथी हो या अन्य पन्थी, हिन्दू हो या मुसलमान।

कितने ही कबीरपन्थी कहलाने वाले सद्गुरु कबीर के विचारों से करोड़ों कोस दूर हैं और कितने ही अपने को कबीरपन्थी तो नहीं घोषित किये हैं, परन्तु कबीर साहेब के विचारों के अनुसार बहुत कुछ चलने की चेष्टा करते हैं। अतएव केवल किसी गद्दी, शाखा, गुरु आदि का अनुगामी होने से नहीं, किंतु उच्च ज्ञान तथा आचरण से लोग बड़े हो सकते हैं।

23. प्रश्न—वर्तमान में किसी को गुरु न बनाकर यदि सद्गुरु कबीर को ही गुरु मानकर उनके उपदेशों के अनुसार चला जाये तो क्या हानि है?

उत्तर—यह कहना ऐसा है जैसे कोई कहे कि किसी अध्यापक से न पढ़कर जिसने बी० ए० तथा एम० ए० की पुस्तकें लिखी हैं उसी को गुरु मान लें और उसकी पुस्तकें पढ़ लें तो क्या हानि? उन पुस्तकों को पढ़ाने वाला तथा उसका पूरा रहस्य समझाने वाला आज कोई होना ही चाहिए।

सद्गुरु कबीर के विचारों को ग्रहण करने वालों के लिए कबीर साहेब परम सद्गुरु हैं ही, परन्तु उन विचारों का पूरा रहस्य बताने वाला आज किसी को होना ही चाहिए। आज किसी गुरु की सेवा न करना पड़े तथा उसकी आज्ञा में न चलना पड़े, इसलिए वर्तमान गुरु की शरण न लेना बहुत बड़ी दुर्बलता है। हां, जब तक यथार्थ गुरु न मिले तब तक खोजता रहे।

24. प्रश्न—क्या जीव ईश्वर का अंश है?

उत्तर—संसार में एक भी प्रमाण नहीं है कि कोई वस्तु एक ही साथ अंश और अविनाशी हो। जल अंशी है और तरंग उसका अंश है, तो तरंग अविनाशी नहीं, अपितु नाशवान है। घड़ा मिट्टी का अंश है तो अविनाशी नहीं। अतएव

जीव किसी का अंश नहीं अपितु अविनाशी है।

याको माय न याको बापा। यह तो स्वत: आप ही आपा॥ (निर्णयसार)

25. प्रश्न—पहले बीज है कि वृक्ष?

उत्तर—दोनों प्रवाह रूप अनादि हैं।

26. प्रश्न—मुक्त जीव कहां जाकर रहता है?

उत्तर—शरीर में रहते-रहते जो समस्त आसक्ति-कामनाओं से मुक्त हो गया वही जीवन्मुक्त है। जो जीवन्मुक्त है वही शरीर छूटने पर विदेहमुक्त होता है। जीवन्मुक्ति के लिए ही पुरुषार्थ करना चाहिए और उसके बाद विदेहमुक्ति अपने आप हो जायेगी, उसके लिए अलग पुरुषार्थ करने की आवश्यकता नहीं होगी।

जो वस्तु कारण या कार्य होती है, वह आधार या आधेय होती है। मिट्टी कारण है और घड़ा कार्य, अत: मिट्टी आधार है और घड़ा आधेय। परन्तु चेतन न तो कारण है न कार्य; अतएव वह न आधार है न आधेय, अपितु निराधार है। वासनावशी चेतन प्रकृति के आधार में रहता है; परन्तु जब वह वासना से मुक्त होकर अपने शुद्ध स्वरूप में अवस्थित हो जाता है और प्रारब्ध शरीर भी समाप्त हो जाता है, तब वह न किसी को आधार देता है और न दूसरे का आधार लेता है। वह निराधार अपने आप असंग रहता है।

यह सूक्ष्म विषय है, शीघ्र समझ में न आये तो आश्चर्य नहीं। प्राथमिक पाठशाला का एक साधारण अध्यापक होने के लिए मनुष्य को 12-14 वर्ष पढ़ना पड़ता है, फिर इस सर्वोच्च विषय-मोक्षतत्त्व के अध्ययनार्थ कुछ समय तो लगाना ही पड़ेगा।

विदेहमुक्ति की स्थिति कोई शीघ्र न समझ सके तो भी हर कोई जीवन्मुक्ति की स्थिति की यथार्थता समझ सकता है। शरीर रहते-रहते मनोविकारों से मुक्त होकर ही हम सच्चे अर्थ में सुखी रह सकते हैं, और यही जीवन्मुक्ति है जो हर मनुष्य की अन्तरात्मा की प्रबल मांग है।

27. प्रश्न—जड़-चेतन दो वस्तुएं हैं, फिर किसके परखने से बन्धन छूटता है? पारख किसे कहते हैं?

उत्तर—जब मनुष्य शरीरधारी चेतन अपने को जड़ से सर्वथा पृथक परख लेता है और जड़ की सभी आसक्तियां त्याग देता है तब उसका बन्धन छूट जाता है।

देह-इन्द्रिय, अन्त:करण साधनों द्वारा चेतन सबको परखता (जानता) है, इसलिए चेतन का ही शुद्ध स्वरूप पारख है।

28. प्रश्न—यदि जीव ईश्वर का अंश है तो उसे कष्ट क्यों दिया जाता है?

उत्तर—जीव अविनाशी है, अत: किसी का अंश नहीं। कष्ट किसी को इसलिए नहीं देना चाहिए क्योंकि वह किसी को पसन्द नहीं। जो दूसरे को कष्ट देता है वह भूला है और वह उसके फल में कष्ट पायेगा।

29. प्रश्न—एकादशी या अन्य व्रतों के दिन उपवास रहना ठीक है कि नहीं?

उत्तर—एकादशी या अन्य व्रत के दिन उपवास रहने से स्वर्ग मिलेगा या मोक्ष तथा भगवान मिलेंगे यह मानना केवल भ्रम है। किसी-किसी दिन उपवास रहने से पेट की गड़बड़ी ठीक हो जाती है। इसलिए कभी-कभी उपवास रहना चाहिए; परन्तु उस दिन पानी तथा एक-दो बार शर्बत को छोड़कर और कुछ नहीं खाना-पीना चाहिए। अर्थात उपवास के दिन एक या दो बार गुड़ का शरबत, कागदी नीबू का रस डालकर पीना चाहिए। गुड़ न मिले तो शक्कर का शरबत नीबू सहित प्रयोग करें।

आंख, नाक, कान, जीभ, त्वचा, हाथ, पैर, मुख, गुदा, उपस्थ तथा मन इन ग्यारहों को अपने वश में करना ही एकादशी व्रत है।

30. प्रश्न—दान किनको देना चाहिए?

उत्तर—दान केवल असहाय को देना चाहिए, जो अपने हाथों से किसी प्रकार कमाई नहीं कर सकता है। लूले, लंगड़े, अन्धे, कोढ़ी आदि जो सर्वथा लाचार हैं, उन्हीं को दान करो, उन्हीं को दो। और जो ये भिखारियों का बहुत बड़ा दल भारत में घूम रहा है जो कि काम कर सकता है उसको भिक्षा देकर तो देश को बरबाद करना है। जो लोग लूले, कोढ़ी आदि असहायों को यह कहते हैं कि ये अपने पूर्वजन्म के फल भोग रहे हैं, इनको क्यों दिया जाये, यह कहना ठीक नहीं है। सब अपने ही कर्म-फल भोग रहे हैं, यह कहना तो ठीक है; परन्तु उनकी सहायता नहीं करनी चाहिए—यह कहना गलत है। यदि ऐसा कहने वाला स्वयं अन्धा हो जाये तो क्या वह अपने लिए यह नहीं चाहेगा कि हमें कोई रास्ता बता दे।

दूसरे, दान उनको भी देना चाहिए जो सच्चे विरक्त सन्त तथा विद्वान हैं; क्योंकि उनके द्वारा समाज को सदाचार तथा ज्ञान की प्रेरणा मिलती है। जो साधु-वेष बनाकर विषय-वासना या गांजा-भांग, तम्बाकू आदि व्यसनों तथा नाना विकारों में आसक्त हैं, उनको कभी कुछ नहीं देना चाहिए। जो सच्चे हृदय से त्यागी तथा सदाचारी सन्त हैं, उनकी सेवा करना चाहिए। विद्वान ही ब्राह्मण कहलाने योग्य हैं, चाहे वे किसी वर्ण-जाति के हों; और उनसे भी समाज को कुछ मिलता है इसलिए विद्वान की भी सेवा करना चाहिए।

31. प्रश्न—नित्य के जीवन व्यवहार तथा खेती-गृहस्थी के क्रम में अहिंसा व्रत का पालन कहां तक हो सकता है?

उत्तर—गृहस्थ को चाहिए कि वह जिन पशुओं का पालन करे, उनकी पूरी सेवा करे, उन्हें कष्ट न होने दे। खाट जब बनवाये तब उसमें पाउडर डाल देने से कीड़े नहीं पड़ते। यदि कदाचित कभी कीड़े पड़ जायें तो खाट को घर के बाहर करके झाड़ देना चाहिए। छोटे-छोटे जीवों को मारने की आदत बनाना, अपने स्वभाव को क्रूर बनाना है। मनुष्य को चाहिए कि वह शक्ति चले तक जीवहत्या से बचे। वैसे गृहस्थी में गृहस्थी का काम तो करना ही पड़ेगा।

मछली मारते हुए एक मछुआरा से पूछो—तुम क्या करते हो तो वह कहेगा कि मैं मछली मारता हूं। परन्तु एक हल चलाने वाले किसान से पूछो कि तुम क्या करते हो, तो वह यह नहीं कहेगा कि मैं चींटी या कीड़े मारता हूं। वह कहेगा मैं खेत जोतता हूं। यद्यपि खेत जोतने में चींटी तथा कीड़े मरते हैं; परन्तु उसका उद्देश्य उन्हें मारना नहीं, अपितु खेत जोतना है।

सांप-बिच्छू हमारे शत्रु नहीं, वे एक सहज प्राणी हैं, सांप-बिच्छू पहले प्राय: नहीं काटते जब तक वे हमारे पैरों या अंगों से कटते-दबते नहीं। परन्तु उनसे विषधर हम हैं जो उन्हें मात्र देखकर ही हम उनके ऊपर हमला कर देते हैं। मनुष्य जितना सांप-बिच्छुओं को देखता है, उन्हीं को मार सकता है, परन्तु घर में न मालूम कितने सांप-बिच्छू होते हैं, वे सब कहां मनुष्यों को सब समय काटते रहते हैं? अत: उनको मारना निरर्थक है।

32. प्रश्न—जो दुराचारी मनुष्य चोरी-डाका आदि कुकर्मों में रत हैं, उनके साथ क्या करें?

उत्तर—दुष्टों का दमन आवश्यक है। जनता तथा शासन को चाहिए कि दुष्टों का दमन करें। समझा-बुझाकर प्रेम के रास्ते से उन्हें सन्मार्ग में लाना उत्तम है। परन्तु इस प्रकार इक्के-दुक्के ही सन्मार्ग पर आते हैं। दुष्टों के दमन से समाज तथा देश में शांति आ सकती है।

33. प्रश्न—अध्ययन काल में प्राणिविज्ञान के अध्ययन में निरपराध मेढक आदि को मारा जाता है, क्या यह पाप है?

उत्तर—निरपराध प्राणी को मारना पाप तो है ही। भले ही तुम उसके बाद डॉक्टरी पास करके बहुतों की सेवा करो और पुण्य अर्जित करो, परन्तु जो निरपराध प्राणी को पीड़ा दी गयी है, उसका फल दुख होगा ही। शिक्षा प्रणाली में भी बहुत त्रुटि है, जो आवश्यकता से अधिक प्राणियों को पीड़ा दी जाती है।

34. प्रश्न—कोई दूसरा देश हमारे देश पर चढ़ आये तो हम क्या करें?

उत्तर—उसका डटकर सामना करें तथा उसे खदेड़कर अपना देश स्वतंत्र रखें।

35. प्रश्न—आत्मा एक है या अनेक?

उत्तर—यदि आत्मा एक होता तो कौन किससे पूछता? आत्मा एक है या अनेक, यह प्रश्न ही अनेकता को सिद्ध करता है। एक ही काल में कोई जन्म लेता है, कोई मरता है, कोई बन्ध है, कोई मुक्त—अनेकता का इससे प्रबल प्रमाण और क्या होगा? हर आत्मा अर्थात चेतन अपने को दूसरे से सर्वथा पृथक अनुभव करता है।

अनेक आत्माओं को प्रतिबिम्ब, प्रतिभास आदि मानना महान अज्ञान है; क्योंकि प्रतिबिम्ब-प्रतिभास आदि को ज्ञान नहीं हो सकता और आत्माओं को प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। इसी प्रकार आत्मा को व्यापक भी नहीं कहा जा सकता। अपनी व्यापकता का किसी को अनुभव नहीं होता। साधारण ही नहीं, बड़े-बड़े ज्ञानी भी अपने आपके विषय में किंचित्मात्र भी व्यापकता का अनुभव नहीं कर पाते। यदि हम आत्मा व्यापक हैं तो अनन्त ब्रह्मांड की बात क्यों नहीं जानते? आत्मा एक है और व्यापक है, कल्पित वाणी-प्रमाण को छोड़कर इसको सिद्ध करने का आधार न प्रत्यक्ष व्यवहार है और न विवेक।

सभी आत्माओं का ज्ञान गुण एक है; इसलिए गुण की दृष्टि से आत्माओं की एक जाति—ज्ञान है; परन्तु व्यक्तित्व की दृष्टि से सभी आत्माएं एक दूसरे से सर्वथा सर्वकाल में भिन्न हैं। 'आत्मा व्यापक है' का अर्थ यह लग सकता है कि आत्मा अपने ज्ञान की दृष्टि से महान है, विशाल है, न कि वह द्रव्य की दृष्टि से सर्वत्र फैला है।

कितने विद्वानजन की धारणा है कि ''आत्मा एक और व्यापक रहने से ही वह अजर-अमर-अविकारी रह सकता है, यदि आत्मा अनेक तथा एकदेशी होंगे तो वे नष्ट हो जायेंगे।'' परन्तु यह धारणा सर्वथा भ्रमपूर्ण है। जड़ तत्त्व की अन्तिम सूक्ष्म इकाई भी नहीं नष्ट होती, तो आत्मा क्यों नष्ट हो जायेगा। आत्मा व्यापक है तो शरीर मुरदा क्यों हो जाता है? व्यापक होने से मुरदा में भी आत्मा सिद्ध हो जाता है, अत: शरीर मुरदा नहीं होना चाहिए। अतएव आत्मा, अर्थात चेतन व्याप्य-व्यापक भाव रहित असंख्य हैं।

सांख्य दर्शन के सिद्धांत में भी चेतन अनेक माना गया है—'पुरुषबहुत्वं सिद्धम्'। अर्थात—चेतन अनेक सिद्ध हैं।

(श्री ईश्वरकृष्ण, सांख्य कारिका 18)

36. प्रश्न—सत्पुरुष तथा कबीर साहेब दो हैं या एक?

उत्तर—जड़-चेतन दोनों सत्य हैं। मनुष्य का जो अपना लक्ष्य है, वह उसका चेतन स्वरूप है। इसलिए कल्याणस्वरूप यह चेतन ही सत्य है। जो जड़ की आसक्ति को छोड़कर अपने चेतनस्वरूप में स्थित हैं वे व्यक्ति ही सत्पुरुष हैं। अत: सद्गुरु कबीर साहेब सत्पुरुष हैं, यह मानने में कोई सन्देह नहीं। इसी प्रकार जो कोई भी जड़ विषयों की आसक्ति छोड़कर अपने चेतन स्वरूप में स्थित होता है वह सत्पुरुष है। इसके अतिरिक्त लोक-लोकान्तरों में सत्पुरुष की खोज करना एक भ्रम है। चेतन ही सत्पुरुष है, और चेतन की स्थिति ही सतलोक है।

सत्पुरुष को कबीर साहेब से पृथक खोजना एक भ्रम है तथा कबीर साहेब को एक महत्तम मानव (सन्त) से पृथक बताना भूल है। जो लोग कबीर साहेब को, उनकी वास्तविकता (मानवीय स्तर) से ऊपर उठाकर उन्हें अनन्त ब्रह्माण्ड का हर्ता-कर्ता सिद्ध करने का असफल प्रयास करते हैं; उन्हें भी चाहिए कि वे सत्पुरुष को कबीर साहेब से पृथक न खोजें।

37. प्रश्न—सृष्टि कब से हुई?

उत्तर—बीज से वृक्ष तथा वृक्ष से बीच, अण्डा से मुरगी और मुरगी से अण्डा, प्रारब्ध से पुरुषार्थ एवं पुरुषार्थ से प्रारब्ध सदा से होते आये हैं। इनमें न कोई पहले है न पीछे। इसलिए यह दिखती हुई सृष्टि प्रवाह रूप अनादि है।

असंख्य चेतन नित्य हैं, मिट्टी, पानी, आग, हवा जड़ तत्त्व भी नित्य हैं। इनकी उत्पत्ति या सृष्टि की कल्पना करने की आवश्यकता ही नहीं है। इनके बीच में जो सृष्टि होती है वह तो इनके ही गुण, धर्म, क्रियाओं से हो रही है, फिर इनकी सृष्टि की अलग कल्पना करने की क्या आवश्यकता है?

वास्तव में यह जड़-चेतनमय संसार ऋत और सत्यमय है। जगत की सर्वथा उत्पत्ति या प्रलय मानना निरर्थक है। जैसे संसार आज है, सदा से रहा है और सदा रहेगा। इस विषय को भलीभांति समझने के लिए 'जगन्मीमांसा' पढ़ें।

38. प्रश्न—क्या सभी प्राणियों में आत्मा एक जैसा ही रहता है?

उत्तर—आत्मा अर्थात चेतन सभी शरीरों में एक जैसा ही है। क्योंकि सभी आत्माओं का एक गुण-ज्ञान ही है। हां, देहोपाधि से उनके गुण, कर्म तथा संस्कारों में भिन्नता अवश्य हो सकती है; परन्तु मूल रूप में सभी चेतन एक समान हैं।

39. प्रश्न—गुरुसम्प्रदाय आदि है या अनादि?

उत्तर—रोग पहले चिकित्सा पीछे। बन्धन अनादि है। बन्धनों से दुखी होकर उससे मुक्ति पाने की खोज उसके पीछे होती है। इसलिए सम्प्रदाय आदि है। परन्तु गुरु स्वरूप, अर्थात मूलतः चेतन का ज्ञानपक्ष अनादि है। वस्तु अनादि, उसकी खोज आदि।

40. प्रश्न—पारख सिद्धान्त के महात्मा अपने को कबीरपंथी क्यों लिखते हैं?

उत्तर—क्योंकि वे कबीर साहेब के मौलिक सिद्धान्त 'पारख' को मानने वाले हैं।

41. प्रश्न—क्या कबीर साहेब के पहले के महात्मा मुक्त नहीं होते थे, कबीर ही से मुक्ति का आरम्भ हुआ है?

उत्तर—मुक्त चेतन का स्वरूप है। वह जब विषयासक्ति बन्धन को त्यागकर अपने आप सन्तुष्ट हो जायेगा, तभी मुक्त हो जायेगा। इस अनादि-काल के जगत में जब जो अपने सत्य स्वरूप को समझकर उसमें स्थित हुआ होगा, तब वह मुक्त हो गया होगा, तथा आगे भी जो सत्य में स्थित होगा, वह मुक्त हो जायेगा। उसमें किसी व्यक्ति, समाज, पन्थ, सम्प्रदाय, स्थान की हदबन्दी नहीं हो सकती। व्यक्ति की वास्तविकता मुक्त स्वरूप ही है। उसे समझना होगा तथा जैसा वह असंग, निराधार, अकेला है, वैसी स्थिति बनानी होगी।

42. प्रश्न—क्या ईश्वर की प्राप्ति बिना मन्दिर गये; मन में ध्यान करके हो सकती है?

उत्तर—पहले यह समझ लेना होगा कि ईश्वर क्या है? ईश्वर नाम की कोई ऐसी वस्तु मुझसे पृथक नहीं है जो किसी साधन से मिलती हो। जो वस्तु मिलती है वह छूटती है। मिलने-छूटने वाली वस्तु प्रकृतिजन्य एवं जड़ होती है। मनुष्य का मूलस्वरूप, उसका आत्मा, उसका अपना चेतनस्वरूप, जो मैं के रूप में इस शरीर के खोल में विद्यमान है, वह चेतन तत्त्व ही उसका सर्वस्वरूप है, उसका सर्वतन्त्र स्वतंत्र धन है। उसी को यदि आप कहना चाहें तो ईश्वर कह लें, परमात्मा, ब्रह्म तथा खुदा कह लें, चाहे उसे गॉड कह लें, इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। परन्तु यह निश्चय समझ लें कि वह आप ही हैं। उससे पृथक वस्तु नाशवान है।

सीधी बात है, जो जीवन का लक्ष्य है, जो सत्, चिद् तथा मंगलमय शांतस्वरूप है; वह आप स्वयं हैं। स्वयं को पाना नहीं होता। वह तो नित्य

अपने आप ही है। केवल अपने मन को बाह्य भटकाव से हटाकर अपने आप में शांत होना होता है। इसके लिए सद्ग्रन्थों का अध्ययन, विवेकी सन्तों का सत्संग तथा सदाचार का पालन आवश्यक है।

जिसको विवेकी गुरु नहीं मिले, जिसको बोध-विचार नहीं प्राप्त है, वह मन्दिर, मसजिद में जाकर कुछ लाभ उठाता है तो अच्छा ही है। कुछ न करने की अपेक्षा कुछ करना अच्छा है। वैसे यथार्थ गुरु तथा यथार्थ ज्ञान मिल जाने पर तो यह शरीर ही मन्दिर है तथा इसमें निवास करने वाला चेतन ही देवता है।

* * *

43. प्रश्न—क्या बिना गुरु के हम इस संसार रूपी सागर से पार उतर सकते हैं?

उत्तर—मैं भी प्रश्न कर रहा हूं कि क्या कोई बिना अध्यापक के विद्यार्जन तथा किसी भाषा का ज्ञान प्राप्त कर सकता है? यदि नहीं, तो वही बात अपने प्रश्न के विषय में समझें। जब व्यावहारिक ज्ञान के लिए भी गुरु की आवश्यकता है, तब आध्यात्मिक ज्ञान तथा साधना के दिशानिर्देश के लिए तो साधना-बोध-सम्पन्न गुरु की महान आवश्यकता है ही।

44. प्रश्न—गुरु का अपमान करने से क्या होता है?

उत्तर—सब प्रकार से पतन।

45. प्रश्न—मरने के बाद मनुष्य की आत्मा का निवास कहां होता है?

उत्तर—जैसे उसके कर्म होंगे, वैसी योनि में उसका निवास होगा। यदि वह समस्त कर्मबन्धनों से एवं सर्वासक्ति से मुक्त हो गया है, तो शरीर छूट जाने पर विदेहमुक्त तथा सदैव के लिए मंगलमय हो जाता है।

46. प्रश्न—स्वर्ग किसे कहते हैं?

उत्तर—सत्संग को। भौतिकीय दृष्टि से सुबुद्धिपूर्वक सांसारिक सुखों का उपभोग भी स्वर्ग है। अलग स्वर्गलोक केवल कल्पित है। वस्तुत: स्वर्ग है आत्मा का अपने आप में स्थित हो जाना।

47. प्रश्न—संयम और विवेक क्या है?

उत्तर—मन, वाणी तथा शरीर को अपने वश में रखना संयम है, और सार-असार को पृथक करना विवेक है।

48. प्रश्न—असली स्नान क्या है?

उत्तर—मन को सत्संग-सद्विचार में धोकर शुद्ध करना।

49. प्रश्न—जब चेतन पारख (ज्ञान) स्वरूप है, तब पिछले जन्मों की बातें क्यों नहीं जानता?

उत्तर—आप अपने इसी जन्म की शिशु अवस्था की बात क्यों नहीं जानते? आज से एक वर्ष के पूर्व इसी दिन, तिथि, घण्टा, मिनट, सेकेण्ड में क्या सोच रहे थे, इस बात को आप क्यों भूल गये? फिर पूर्व जन्मों की बातें कैसे याद रहें? वास्तव में इस चेतन से तन, मन, संसार पृथक हैं, इसलिए वे भूल जाते हैं। इस बात को ठीक से समझने के लिए सद्गुरु श्री विशाल साहेब रचित 'मुक्तिद्वार' के चतुर्थपाठ 'बन्ध-मोक्ष शतक' के छठें प्रसंग की 58 से 92 साखियां टीका सहित देखें।

50. प्रश्न—'मम दर्शन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज स्वरूपा॥' इसका भाव क्या है?

उत्तर—रामचरितमानस में श्रीरामचन्द्रजी शबरी के आश्रम में जब पहुंचे, तब शबरी ने श्रीराम का स्वागत कर उनसे प्रार्थना की। महाराज राम ने उसे नवधाभक्ति सुनायी और उसके अन्त में यह चौपाई कही। उपदेष्टा गुरु होता है और श्रोता शिष्य। यहां श्रीराम जी उपदेष्टा होने से गुरु हैं तथा शबरी श्रोता होने से शिष्या है।

श्रीराम जी कहते हैं कि मेरे दर्शन अर्थात सद्गुरु के दर्शन का फल बड़ा विलक्षण होता है, इससे जीव अपने सहज स्वरूप को पा लेता है। शिष्य जब श्रद्धापूर्वक सद्गुरु के दर्शन करता है और सद्गुरु जब उसे स्वरूपज्ञान देते हैं, तब शिष्य अपने सहज-स्वरूप को जानकर उसमें स्थित हो जाता है। यही स्वरूप को पाना है।

जो अपने से पृथक होता है, उसका मिलना कठिन तथा असम्भव भी होता है; परन्तु जीव का उसका अपना चेतन-स्वरूप स्वत: है, इसलिए सहज है। उसे पाना नहीं है, अपितु जो जड़ प्रकृति है, उसे मन से त्यागकर शेष रह जाना है। इस प्रकार जीव जब अपने से पृथक सारे दृश्यों को मन से त्याग देता है, तब वह त्यागने वाला शेष रहता है, तब उसे अपने स्वरूप का महत्त्व प्रतीत होता है। यही अपने आपको पाना है। समस्त आसक्तियों एवं बन्धनों से छूट जाना ही, अपने आपको पाना है।

श्रीराम जी द्वारा कथित यहां की नवधाभक्ति साम्प्रदायिक नहीं है, अपितु सार्वजनीन है, सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् है। पूरी नवधा-भक्ति को न लिया जा

सके तो शुरू की प्रथम भक्ति तथा अन्त की उक्त चौपाई का भाव ले लेने से कल्याण की पूरी सामग्री आ जाती है। उन्होंने आरम्भ में कहा ''प्रथम भक्ति सन्तन कर संगा'' और नवधा भक्ति के अन्त में उक्त चौपाई कही ''मम दर्शन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज स्वरूपा॥'' इसमें संतों की संगत तथा सद्गुरु के दर्शन से जीव को अपने सहज स्वरूप की प्राप्ति होना बताया गया है। श्रीरामजी ने यह नहीं कहा कि जीव हमारे स्वरूप को पा लेता है, प्रत्युत यह कहा कि जीव अपने सहज स्वरूप को पा लेता है। वास्तव में जीव का अपना स्वरूप ही परम तत्त्व है। जीव चेतन है, ज्ञान-स्वरूप है, अविनाशी है और प्रत्येक शरीर में भिन्न-भिन्न विद्यमान है। उसका वास्तविक स्वरूप शरीर-रहित है।

सभी जीव अर्थात चेतन ज्ञान गुण में समान होने से सजातीय हैं किन्तु व्यक्तित्व में परस्पर सर्वथा भिन्न हैं।

51. प्रश्न—''सन्मुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नाशहिं तबहीं।'' जीव की सन्मुखता और विमुखता क्या है?

उत्तर—जब विभीषण रावण से अपमानित होकर श्रीराम की शरण में जाता है, तब सबके सहित सुग्रीव विभीषण को शंका की दृष्टि से देखते हैं। उस समय श्रीरामजी ने अनेक वचनों के साथ यह चौपाई कही है, जिसका भाव है कि जीव जब मेरे सम्मुख होता है, तब उसके करोड़ों जन्मों का पाप नष्ट हो जाता है।

दुखी और भक्त जीव विभीषण है, वह मन-रावण से प्रताड़ित होकर और संसार-लंका से उपराम होकर सद्गुरु रूपी श्रीराम की शरण में जाता है। बोध-वैराग्य सम्पन्न सद्गुरु उसे निर्भय दान देते हैं। वास्तव में जब मुमुक्षा एवं उपासनापूर्वक शिष्य पूर्णरूपेण सद्गुरु के सम्मुख होता है, तब उसके जन्म-जन्मांतर के अज्ञान रूपी अपार पाप नष्ट हो जाते हैं। जीव का संसार-विषयों से विरक्त होकर स्वरूपज्ञान तथा सदाचार की ओर चलना ही गुरु के सम्मुख होना है; और देहाभिमान तथा विषयासक्ति में लगना ही गुरु से विमुख होना है।

जो सदाचरणपूर्वक स्व-स्वरूपस्थिति की ओर चलता है, वह भवतारक सद्गुरु के सम्मुख है।

52. प्रश्न—क्या वर्तमान के गुरु मुक्त नहीं हैं, फिर भूतकाल के कबीर का गुणानुवाद क्यों गाया जाता है?

उत्तर—जो विषयों से अनासक्त तथा स्वरूपज्ञान में स्थित हैं, ऐसे व्यक्ति ही सन्त तथा गुरु हैं, और वे वर्तमान में भी हैं। उनके प्रति श्रद्धा-भक्ति वर्तमान

में रखना आवश्यक है। परन्तु जो पहले के सन्त हमें ज्ञान-धन का अपार कोष दे गये हैं, क्या आज हम उनके लिए कृतज्ञता के दो शब्द भी न कहें? सद्गुरु कबीर के बताये हुए ज्ञान का आचरण करता हुआ व्यक्ति क्या उनको भूल सकता है? ऐसी स्थिति में यदि वह कबीर साहेब की महानता का स्मरण करके उनके विषय में श्रद्धा के दो शब्द कह दे, तो कौन-सा अपराध हो गया? इसी प्रकार भूतकाल के अन्य महापुरुषों के प्रति भी है।

53. प्रश्न—बड़े-बड़े महात्माओं में एकता, प्रेम न रहकर द्रोह क्यों रहता है? क्या प्रेम-एकता लाने के लिए कोई अन्य स्थान शेष है?

उत्तर—आप बड़े महात्मा का लक्षण क्या मानते हैं? क्या विद्वता, वक्तव्य, ख्याति, लोकप्रतिष्ठा, धन, बड़ा मठ, ऊंची गद्दी, हजारों-लाखों अनुगामियों का होना? बड़ा महात्मा तो वह है, जो राग-द्वेष से सर्वथा रहित है।

सच्चे महात्मा किसी का स्वभाव न मिलते हुए देखकर उससे अलग होकर भले रहें, परन्तु उसका वे अहित नहीं चाहेंगे और न सपने में भी उससे द्रोह करेंगे। जो दूसरे से द्रोह करता है वह सन्त कहां?

सबसे उत्तम समझदारी सन्त की होती है या यों कहिये कि जिनकी समझदारी सर्वोत्तम है, वह सन्त है। ऐसे सन्त के चित्त में समता और प्रेम ही विराजते हैं। वे किसी से द्रोह नहीं करते, अपितु अपने द्रोही का भी मन से हित चाहते हैं।

जितने लोग साधुवेष धारण करते हैं, वे तुरन्त परिपक्व सन्त नहीं हो जाते। यदि उनके कुछ शुभ-कर्मों तथा प्रारब्धिक योग्यताओं से उनको धन, प्रतिष्ठा, अनुगामी मिलने लगें और यदि वे सावधान न रहें, तो साधना की दृष्टि, वैराग्य एवं कल्याण के लक्ष्य से रहित होकर धन-प्रतिष्ठा तथा शिष्य-शाखा की ही इच्छा में हर समय निमग्न रहते हैं। वे जितने धन, प्रतिष्ठा, शिष्य पाते जाते हैं, उतनी ही उनकी भूख बढ़ती जाती है। इसलिए वे अपने समान या अपने से अधिक किसी को देखकर सह नहीं पाते और ईर्ष्या-द्वेष के शिकार हो जाते हैं। ऐसे लोगों का गलत व्यवहार देखकर लोग कहने लगते हैं कि सब ऐसे ही होते हैं, वेष में ईर्ष्यालु-द्वेषी अधिक होते हैं, सच्चे संत कम होते हैं। परन्तु जो सन्त हैं वे सचमुच निम्न साखी के अनुसार होते हैं—

सोना सज्जन साधुजन, टूटि जुरैं सौ बार।
कुजन कुम्भ कुम्हार का, एकै धका दरार॥

(बीजक, साखी 225)

54. प्रश्न—आत्मा के ऊपर किसका नियन्त्रण है तथा आत्मा को कौन शक्ति संचालित करती है?

उत्तर—आत्मा के ऊपर किसी का भी नियन्त्रण नहीं है। यह सर्वतन्त्र स्वतन्त्र है। इस बात की प्रत्यक्षता जगत में प्रकट है। जिसकी जो इच्छा होती है, वह वही कर्म करता है; जिस मत, पथ, ग्रन्थ को ग्रहण करने की इच्छा होती है, वही ग्रहण करता है; जिधर जाना चाहता है, जाता है।

यदि ईश्वर के बनाये वेद होते तो वह वेद से बाहर किसी को न जाने देता। वस्तुस्थिति ऐसी है कि संसार में वेदों को ईश्वर-वाक्य मानने वाले बहुत कम हैं। यही बात बाइबिल तथा कुरान पर भी लागू है।

आजकल भारत पर इन्दिरा-सरकार का नियन्त्रण है तो उसके कानून को सभी को मानना पड़ता है; ऐसा नियन्त्रण जीवों पर किसी शक्ति का नहीं दिखता है, अन्यथा ये आत्मा भी एक कानून में आबद्ध होते। वस्तुस्थिति ऐसी है कि एक तो वेदपाठ, सन्ध्या, यज्ञ आदि मोक्षमार्ग मानता है। दूसरा ये सब महाकुपन्थ मानता है किंतु वह कुरान-पाठ, रोजा, नमाज, हजरत मोहम्मद में विश्वास करना कल्याण का पथ बताता है। तीसरा इसके विरुद्ध है और प्रभु ईसा मसीह को सर्वोपरि बताता है। जो कुपन्थ में जाना चाहता है, वह कुपन्थ में जाता है और जो सुपन्थ में जाना चाहता है, वह सुपन्थ में जाता है। उसको कोई अपर शक्ति घुमाकर दूसरी ओर नहीं करती। हां, एक मनुष्य दूसरे को सुपन्थ-कुपन्थ की ओर प्रेरता है या अपने हृदय की शुभ-अशुभ वासनाएं आत्मा को अच्छे या बुरे की ओर ले जाती हैं।

यदि यह मान लिया जाये कि जीव को कोई दूसरा संचालित करता है अर्थात उसे कर्म करने की प्रेरणा कोई दूसरा देता है, तो ऐसी स्थिति में जीव निर्दोष होगा और सारा पाप-पुण्य जीव को प्रेरित करने वाले के ऊपर जायेगा। यदि किसी व्यक्ति ने हत्या कर दी, डाका डाला तो वह बेचारा क्या करे। यह अपराध तो उसको प्रेरित करके दूसरी शक्ति ने करवाया। इस धारणा में न वस्तुतथ्य है और न तो यह मान्यता मानव-समाज के लिए कल्याणकर है। इस धारणा से मनुष्य अपने द्वारा किये गये अच्छे-बुरे कर्मों का सारा उत्तरदायित्व अपने से परे प्रेरक शक्ति पर डालकर मनमाना कुकर्म करने पर तत्पर हो जायेगा।

इस विश्व के प्रवहमान आध्यात्मिक धारा में दो धाराएं मुख्य हैं—एक विश्वास धारा, जिसमें माना जाता है कि हमसे पृथक परमात्मा है, वही हमारा नियन्त्रणकर्ता, प्रेरक तथा रक्षक है; दूसरी विवेक धारा, जिसमें माना जाता है कि परमात्मा नाम की वस्तु मुझसे पृथक नहीं है। यह आत्मा ही जब समस्त

जड़ संस्कारों से मुक्त हो जाता है, तब यही परमात्मा है। यथा—

आत्मा क्षेत्रज्ञ इत्युक्तः संयुक्तः प्राकृतैर्गुणैः।
तैरेव तु विनिर्मुक्तः परमात्मेत्युदाहृतः॥

(महाभारत, शान्तिपर्व 187/23)

अर्थ—जब आत्मा प्रकृति के गुणों में बंधा रहता है, तब वह क्षेत्रज्ञ कहलाता है; जब वह उसके बन्धनों से भलीभांति छूट जाता है, तब परमात्मा कहलाता है।

महात्मा बुद्ध ने धम्मपद में कहा है ''अत्ता ही अत्तनो नाथो॥ 160॥ अत्ता ही अत्तनो गति॥ 380॥ अर्थात आत्मा ही आत्मा का स्वामी है तथा आत्मा ही आत्मा का लक्ष्य है।

कबीर साहेब बीजक में कहते हैं ''हो हजूर ठाढ़ कहत हौं, तैं क्यों धोखे जन्म गमाव॥ रमैनी 24॥'' अर्थात तू स्वतः हुजूर है, सरकार है, मैं दृढ़तापूर्वक कहता हूं, तू धोखे में क्यों जीवन खो रहा है।

विश्वासी व्यक्ति आत्मा से परमात्मा को अलग मानता है तथा विवेकी आत्मा ही को परमात्मा मानता है।

जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है, यह बात सबकी समझ में प्रायः आ जाती है। कर्मफल भोगों में जीव उन कर्मों के ही अधीन है। विश्वासी मानता है कि कर्मफल भोग ईश्वर देता है। यदि ईश्वर ही दे तो भी वह पाप का फल सुख तथा पुण्य का फल दुख नहीं दे सकता। हमारे कर्मानुसार ही कर्मफल दे सकता है। विवेकी मानता है मन में कर्मों का संस्कार होता है और बीज-वृक्ष-न्याय उन कर्मों के अनुसार फल स्वतः होता है।

जैसा कि वेदों में भी बताया गया है 'ऋत' और 'सत' से संसार की स्थिति चलती है। भौतिक नियमों की कारण-कार्य परम्परा—ऋत है तथा धर्म और नैतिक नियमों की कारण-कार्य परम्परा—सत्य है।

सार यह है कि अपने कर्मों के सुधार करने वाले हम स्वयं हैं। विषयासक्ति ही माया है, यही दुखों का कारण है। इसके त्याग देने पर व्यक्ति सन्तुष्ट हो जाता है। अतएव अपने सुधार-बिगाड़ की सारी जिम्मेदारी हमारे अपने ऊपर है। यह वस्तु-तथ्य है, तथा व्यक्ति एवं समाज का उन्नायक भी।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥ गीता 6/5॥

व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपने द्वारा अपने आपका उद्धार करे, अपने को नीचे न गिरावे, क्योंकि जीव आप ही अपना मित्र है तथा आप ही अपना शत्रु है।

करु बहियाँ बल आपनी, छाड़ बिरानी आस।
जाके आँगन नदिया बहै, सो कस मरै पियास॥

(बीजक, साखी 277)

* * *

55. प्रश्न—भक्ति बड़ी है या ज्ञान?

उत्तर—अपने-अपने स्थान पर दोनों बड़े हैं।

56. प्रश्न—इस जन्म की याद आगे जन्म में तो रहेगी नहीं, तो आज किये गये कर्मों के फल आगे जन्म में कैसे भोगेंगे?

उत्तर—खेत में बीज डाल देने पर उनकी याद किये बिना वे उगते हैं। जो वासनाएं जाग्रत में बना ली गयी हैं, उन्हें हम भूल जाते हैं तो भी उनका स्वप्न होता है। जीव का अन्त:करण कर्म संस्कारों की रील या स्वचालित यन्त्र है। उसके द्वारा अगले जन्म में भी कर्मफल भोग उदय हो जायेंगे।

57. प्रश्न—क्या सांसारिक कर्मों को करते हुए भी समाधि लग सकती है?

उत्तर—निर्वाह का काम तो करना ही पड़ेगा, कहीं मोह न करो।

58. प्रश्न—सत्य किसे कहते हैं?

उत्तर—जो सदा रहे। आप स्वयं सत्य हैं।

59. प्रश्न—मन बड़ा चंचल है, वह स्थिर कैसे हो?

उत्तर—उसे स्थिर वस्तु दो। प्यासा मनुष्य पानी के लिए तब तक भटकता है जब तक वह शीतल एवं मीठा जल नहीं पाता। इसी प्रकार मन स्थिर एवं नित्य सुख के लिए भटकता है। जिस दिन उसे वह मिल जायेगा, भटकना छोड़ देगा। वह स्थिर सुख अपने आप में है।

60. प्रश्न—अहिंसा का व्रत कैसे निभाया जाये?

उत्तर—मन में दया रखकर।

61. प्रश्न—स्वतन्त्र भारत में भुखमरी, शोषण और अत्याचार क्यों?

उत्तर—क्योंकि अधिक खाने वालों की आदत अभी नहीं सुधरी है।

62. प्रश्न—धर्मनिरपेक्षता किसे कहते हैं?

उत्तर—धर्म के किसी भी सम्प्रदाय का पक्ष न होना।

63. प्रश्न—क्या भक्त होने के लिए कंठी-हीरा पहनना जरूरी है?

उत्तर—भक्त की परिभाषा यदि हम अपनी देशी भाषा में करें तो होगा 'बुराइयों से भागने वाला।' जो सब बुराइयों से भागे वह भक्त है। इसके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि उसे यथार्थ स्वरूपज्ञान हो। स्वरूपज्ञान की प्राप्ति तथा जीवनपर्यन्त बुराइयों से बचे रहने के लिए विवेक-वैराग्य सम्पन्न सद्गुरु ही आधार हैं। अतएव सद्गुरु शरण ग्रहण करना आवश्यक है; जिससे उनके सत्संग से बोध-विचार की प्राप्ति हो।

रहा, कंठी-हीरा पहनना, यह अहिंसाव्रत का वेष है। सात्विक वेष का कोई दुरुपयोग न करे तो उसका उत्तम प्रभाव पड़ेगा ही। जिसे गुरु का बोध-विचार प्रिय होगा, उसे उसके द्वारा दिये हुए शुद्धवेष धारण करने में संकोच नहीं होगा। प्रधानता ज्ञान एवं यथार्थ आचरण की है, कंठी-हीरा या किसी वेष की नहीं। वेष सहायक मात्र है। यदि कोई उसका दुरुपयोग करे तो वह क्या करेगा।

64. प्रश्न—एक गुरुमुख व्यक्ति गांजा, भांग, शराब, बीड़ी आदि दुर्गुणों से परिपूर्ण है और दूसरा व्यक्ति इन सबसे दूर है, परन्तु बिना गुरुमुख है। निस्तार (कल्याण) क्रम में प्रथम पारी किसकी होगी?

उत्तर—किसी गुरु से दीक्षा ले लेने मात्र से कोई गुरुमुख नहीं होता जब तक यथार्थ ज्ञान एवं यथार्थ आचरण उसमें न आये। जो गुरुदीक्षा लेकर पुनः दुराचरण में लगा है, वह अपने आपके साथ समाज को भी धोखा देता है। उसका कल्याण होने का तो कोई प्रश्न ही नहीं है। जो गुरुमुख तो नहीं है, परन्तु दुराचरण से बचा है वह उत्तम है; परन्तु उसका कल्याणकार्य उतने में ही पूरा नहीं हो गया। उसे यथार्थ ज्ञान के लिए योग्य सद्गुरु की आवश्यकता है और गुरु से प्राप्त ज्ञान तथा साधना की युक्तियों से उसे आगे आध्यात्मिक स्तरों में बढ़ना है।

65. प्रश्न—अबोध, अनिच्छुक व्यक्ति को जबरदस्ती दीक्षा-मन्त्र देना एवं कंठी पहना देना कहां तक उचित है?

उत्तर—कहां तक उचित नहीं, सर्वथा अनुचित है। जो यथार्थ गुरु होता है वह जिज्ञासु की श्रद्धा और कोशिश पर उसकी चारित्रिक स्थिति देखकर उसे दीक्षा देता है। जबर्दस्ती किसी को दीक्षा देने वाले, लोगों को शिष्य नहीं बनाते, अपितु स्वयं लोगों के शिष्य बन जाते हैं।

66. प्रश्न—गुरुमुख होना जरूरी है कि गुरु के उपदेशों का पालन करना?

उत्तर—यह प्रश्न विरोधाभास को लिए हुए प्रतीत होता है। गुरु की आज्ञाओं का पालन ही सब कुछ है परन्तु जो गुरुमुख नहीं होगा वह गुरु-आज्ञा का पालन कैसे करेगा? कोई व्यक्ति गुरु-आज्ञा का पालन करता है, इसका अर्थ है कि वह किसी को गुरु मानता है। यदि कोई जिज्ञासु किसी ज्ञानी एवं संतपुरुष को दृढ़तापूर्वक गुरु मानता और सन्मार्ग में चलता है तो चाहे वह दीक्षा संस्कार लिए हो या नहीं, परन्तु वह गुरुमुख ही है।

उपर्युक्त बातें होने पर भी एक बात निश्चित है कि दीक्षा-संस्कार ग्रहण कर लेने पर शिष्य के मन में स्थायी भाव उत्पन्न हो जाता है। बिना दीक्षा लिए कोई बिरला ही गुरु के प्रति स्थायी भाव बना पाता है। यह ठीक है कि शिष्य किसी गुरु से दीक्षा लेता है परन्तु उस गुरु में पूर्ण योग्यता न होने से उसकी उसमें स्थायी श्रद्धा नहीं जम पाती और दूसरे योग्य ज्ञान-वैराग्य सम्पन्न शिक्षक संत में श्रद्धा जम जाती है। इसीलिए दीक्षागुरु की अपेक्षा शिक्षागुरु अधिक श्रेष्ठ होता है। श्री रामरहस साहेब कहते हैं—

जा मुख निर्णय लखे विशेष। तेहि गुरु सम न और कोई लेख॥ (पंचग्रन्थी)

अर्थात जिसके मुख से विशेष निर्णय एवं ज्ञान प्राप्त हो, उसके समान दूसरा गुरु नहीं है।

जिसके ज्ञान और आचरण दोनों पवित्र हैं, वह वास्तविक गुरु है। ऐसे गुरु की खोज करनी चाहिए। जिसे जीवन का कल्याण करना प्रिय हो, उसे चाहिए कि ऐसे महान गुरु को आत्मसमर्पण करे। अपना मन बिना किसी योग्य गुरु को समर्पित किये जिज्ञासु का उद्धार होना असम्भव है। जिसमें जन्म-जन्मांतर के शुद्ध संस्कारों से परम विवेक का स्रोत स्वयं फूट पड़े, अपने विवेक बल से अपना उद्धार स्वयं कर ले, ऐसा पुरुष बिरला होता है। परन्तु वह भी पहले गुरु से दिशा तो ग्रहण करता ही है और जीवनपर्यन्त भी किसी न किसी रूप से गुरु-सन्तों के प्रति अपनी श्रद्धा रखता है। फिर सर्वसामान्य के लिए तो गुरु के चरणों में अपने को सर्वथा डाल दिये बिना कल्याण की प्राप्ति कहां सम्भव है? स्वामी विवेकानन्द ने कहा है—

''स्वाधीनता एवं स्वतन्त्रता की बातें चाहे जितनी अच्छी लगें; परन्तु विनय, नम्रता, भक्ति, श्रद्धा एवं विश्वास के बिना कोई धर्म नहीं रह सकता।''

(प्रेमयोग, पृष्ठ 52)

''तुम अपने सिर को दुनिया के चारों कोनों में हिमालय, आल्पस, काकेशस पर्वत पर अथवा गोबी या सहारा की मरुभूमि अथवा समुद्र की तली में जाकर भटका लो, परंतु गुरु के मिले बिना तुम्हें ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता। गुरु की

खोज करो, बालक के समान उनकी सेवा करो, उनके प्रसाद (प्रभाव) को ग्रहण करने के लिए अपना हृदय खोल रखो।''

(प्रेमयोग, पृष्ठ 53)

सद्गुरु कबीर ने कहा है—

जाको सतगुरु ना मिला, ब्याकुल दहुँ दिश धाय।
आँखि न सूझै बावरा, घर जरै घूर बुताय॥

(बीजक, साखी 245)

जब साधारण ज्ञान की प्राप्ति के लिए गुरु की आवश्यकता होती है तब जीवन का परम लक्ष्य एवं मोक्ष की प्राप्ति के लिए सद्गुरु की आवश्यकता के विषय में सन्देह ही नहीं होना चाहिए।

67. प्रश्न—कबीर साहेब ने जीव, आत्मा, परमात्मा, चेतन, जड़ में किसको श्रेष्ठ माना है?

उत्तर—सद्गुरु कबीर ने जड़-चेतन दो वस्तुएं मानी हैं। जड़-चेतन दोनों अपनी-अपनी जगह महत्त्वपूर्ण हैं। परन्तु दोनों में चेतन ही श्रेष्ठ है। आत्मा और परमात्मा चेतन जीव की ही विशेषता के नाम हैं, ऐसा सद्गुरु कबीर ने माना है। जीव, चेतन, आत्मा एक ही बात है। यह आत्मा जब शुद्ध हो जाता है, तब परमात्मा हो जाता है। परम का अर्थ शुद्ध या श्रेष्ठ है। जिस जीव ने सारी जड़ासक्तियों एवं माया-मोह से अपने को ऊपर उठा लिया वही परमात्मा = परम + आत्मा एवं महान आत्मा है। आत्मा कहते हैं स्वयं को।

वस्तुतः लोग भूलवश जिसे बहुत छोटा मानते हैं वह 'जीव' ही महान है। आत्मा, परमात्मा सब उसी के विशेषण हैं।

सद्गुरु कबीर ने कहा है—

बीजक बित्त बतावै, जो बित गुप्ता होय।
ऐसे शब्द बतावै जीव को, बूझै बिरला कोय॥

(बीजक, रमैनी साखी 37)

68. प्रश्न—जड़-चेतन दो वस्तुएं हैं। चेतन जड़ से पृथक होकर मुक्त हो जाने पर कहां रहता है?

उत्तर—जो जीवन्मुक्ति का अनुभव करता है वही विदेहमुक्ति को ठीक से समझ सकता है। जो कारण-कार्य होता है वह आधार-आधेय होता है। पृथ्वी कारण है और घड़ा कार्य है, तो पृथ्वी आधार है और घड़ा आधेय है। घड़ा

बिना पृथ्वी के ठहर नहीं सकता। चेतन न तो किसी का कारण है न कार्य; अतएव वह न किसी का आधार है और न आधेय। वह स्वरूपत: निराधार है।

जब तक चेतन जीव अपने आपको शरीर मानकर विषयों में आसक्त है, तब तक यह कारण-कार्यमय कर्म-शरीर के चक्कर में भटकता है; और जब अपने आपको शरीर से सर्वथा पृथक शुद्ध चेतन ठीक से समझकर विषयासक्ति एवं देहासक्ति की सर्वथा निवृत्ति कर देता है, तब यह शरीर में रहते हुए भी असंग, अनासक्त एवं वासनामुक्त हो जाता है। उसके चित्त में दृश्यमात्र में कहीं मोह नहीं होता। वह सदैव स्वरूपज्ञान में ही निमग्न होता है।

ऐसे पुरुष का प्रारब्धांत में जब शरीर नष्ट होता है तो उसी के साथ अनादि से लगा हुआ सूक्ष्म शरीर भी सदा के लिए नष्ट हो जाता है, और चेतन शुद्ध अपने आप रह जाता है। उस समय न उसे पृथ्वी से सरोकार रहता है, न जल से, न अग्नि से, न वायु से, न आकाश से। वह अपने आप असंग, निराधार, अकेला, शांत, महाशांत, अनन्तशांत रहता है। यहां उसकी यह परिभाषा की जा रही है। वैसी स्थिति में पहुंचकर तो—

मन वाणी का अन्त तहँ, आप-आप ही शेष।

(विशाल वचनामृत)

मुक्त चेतन तस अकेला तहिया। परख प्रकाश स्वरूपहिं रहिया।

(जड़ चेतन भेद प्रकाश)

वासना के सर्वथा त्याग से चेतन जीव का मोक्ष होता है। यह केवल विश्वास की वस्तु नहीं अपितु विवेकपूर्ण एवं अकाट्य है। परन्तु जिसकी समझ में यह न आये, वह भी जीवन्मुक्ति को समझ सकता है। जीते-जीते शोक-मोह से रहित, शांत रहना सब चाहते हैं; अतएव जीवन्मुक्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए। वस्तुत: प्रयत्न तो केवल जीवन्मुक्ति की प्राप्ति के लिए करना है, उसके हो जाने पर विदेहमुक्ति अपने आप आयेगी।

69. प्रश्न—लोगों को नित्य मरते हुए देखते हैं और अपने लिए भी जानते हैं कि आजकल में मर जायेंगे, फिर माया-मोह से वैराग्य क्यों नहीं होता?

उत्तर—इसी का नाम है 'अविद्या'। यह जीव अनादिकाल से पांचों विषयों में आसक्त रहा है। सत्य को समझ लेने के बाद भी इस आसक्ति के कारण जीव पुन:-पुन: फिसलता रहता है। साधु-संगत, सद्ग्रंथ-अध्ययन और विवेक-विचार द्वारा इस आसक्ति को धीरे-धीरे क्षीण करना चाहिए। यह जितनी ही क्षीण होती जायेगी वैराग्य बढ़ता जायेगा। और जितना वैराग्य बढ़ता जायेगा उतनी ही विषयों से निवृत्ति होती जायेगी।

दीर्घकाल तक निरन्तर साधना में लगे रहने से वैराग्य बढ़ता जाता है, और अन्त में पूर्ण वैराग्य उदय हो जाता है। हृदय में पूर्ण वैराग्य के उदय होने पर ''तीनहुँ लोक लगे तिनुका सम, इन्द्रिय स्वाद भये सब फीका'' हो जाता है। वह शरीर को हर समय मरा हुआ देखता है। वह मिले हुए सारे प्राणी-पदार्थों, अवस्था-परिस्थितियों को स्वप्नवत समझता है। उसकी कभी किसी समय कहीं भी आसक्ति नहीं होती। वह अपने को शरीर में से हर समय उसी प्रकार विवेक से निकालकर रखता है जैसे मूंज में से सींक। सब कुछ का अन्त हर समय उसके सामने रहता है।

जो मन पहले रोकने से भी नहीं रुकता था, वह इस अवस्था में अपने आप सदैव शांत रहता है। उसकी दृष्टि में बड़ी-से-बड़ी भौतिक उपलब्धियां कुछ नहीं के समान हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वह अकर्मण्य हो जाता है। वह सदैव लोक-कल्याण में संलग्न होता है, परन्तु शोक-मोह से मुक्त होता है।

अतएव हृदय में उत्कट वैराग्य उत्पन्न होने के लिए साधुसंग, सद्ग्रन्थ अध्ययन, सन्त-सेवा, विवेक, विचारादि से मन का मार्जन करते रहना चाहिए।

70. प्रश्न—चेतन स्वरूप से चल है या अचल?

उत्तर—अचल; क्योंकि वह स्वरूपत: वासना से रहित है।

71. प्रश्न—जिसके पूर्व संचित तो उज्ज्वल हैं, परन्तु उसे वर्तमान में सत्संग नहीं मिला, तो उसकी क्या गति होगी?

उत्तर—उज्ज्वल संचित एवं संस्कार वाले सत्संग न मिलने पर भी अपने शुद्ध संस्कार के बल पर उत्तम कर्म करते हैं और लोक-परलोक (पुनर्जन्म) में सुख के भागी होते हैं। वैसे शुद्ध संस्कारी को सत्संग भी किसी-न-किसी विधि से मिल ही जाता है।

72. प्रश्न—प्राचीन युग में नारी का महत्त्व क्या था, और आधुनिक युग में क्या है?

उत्तर—सभी युगों में नारी का महत्त्व ऊंचा रहा, आज भी है। नारी और पुरुष दोनों समाज के अंग हैं, उनमें कोई छोटा-बड़ा नहीं।

73. प्रश्न—सबसे अच्छा क्या है?

उत्तर—मन को पवित्र करना।

74. प्रश्न—अष्ट सिद्धियां जब कल्पित हैं, तब कई आदमी पानी के ऊपर चलकर दिखाते हैं, वे कैसे चलते हैं?

उत्तर—सिद्धि का अर्थ है किसी गुण या कला में परिपक्व हो जाना। मनुष्य पहले बोलना सीखता है, पीछे बोलते-बोलते उसमें इतना सिद्ध हो जाता है कि वह घण्टों प्रवाहपूर्वक बोलता रहता है। इसी प्रकार जो वैज्ञानिक कसौटी पर कसी जाये, वही सिद्धि या सफलता सम्भव है। छू-मन्तर के द्वारा कुछ-का-कुछ कर देने की बात पाखण्ड है। कोई मनुष्य अपने शरीर को मच्छर जैसा बना ले और पुन: पर्वताकार, यह सब असम्भव है।

75. प्रश्न—प्रकृति को किसने बनाया है?

उत्तर—प्रकृति को किसी ने नहीं बनाया, यह अनादि तथा अनन्त है।

76. प्रश्न—सभी मनुष्यों की शरीर-रचना एवं बनावट में अन्तर क्यों?

उत्तर—क्योंकि सभी जीवों के कर्म-संस्कार भिन्न-भिन्न हैं।

77. प्रश्न—मूर्ति-पूजा और वेदों का क्या सम्बन्ध है?

उत्तर—वेदों में यज्ञों के विधानों का बोलबाला है। उनमें मूर्ति-पूजा नहीं है। यह ठीक है कि किसी-न-किसी प्रकार मूर्ति-पूजा थोड़ी-बहुत सदा रही है, परन्तु ढाई-तीन हजार वर्षों से इसका प्रचलन अधिक बताया जाता है। कहा जाता है कि जैनों तथा बौद्धों द्वारा मूर्तिपूजा का अधिक प्रचार हुआ है।

78. प्रश्न—यदि पुनर्जन्म का सिद्धांत सही है तो मोक्ष का विषय कहां तक सही माना जा सकता है?

उत्तर—पुनर्जन्म शतप्रतिशत सही है। जीव वासना वश पुनर्जन्म को प्राप्त होता रहता है। अत: जब तक वासना, जड़ासक्ति एवं अज्ञान है तब तक यह अविनाशी जीव जन्म-मरण में घूमता रहता है। जो जीव विषयों को विजाति तथा दुखपूर्ण समझकर उन्हें त्याग देता है और उनकी वासनाओं से भी भलीभांति छूट जाता है वह मुक्त हो जाता है। जो जीव मुक्त हो जाता है वह पुन: जन्म नहीं ग्रहण करता।

79. प्रश्न—अनेक घड़ों में सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ने वत क्या ये असंख्य जीव किसी ब्रह्म के प्रतिबिम्ब हैं?

उत्तर—सूर्य एकदेशी है तब दूसरे देश में उसका प्रतिबिम्ब पड़ता है। ब्रह्मवादी लोग ब्रह्म को सर्वत्र मानते हैं, फिर वह कहां नहीं है जहां उसका प्रतिबिम्ब पड़ेगा? इस अविनाशी चेतन जीव को प्रतिबिम्ब, आभास, अंश आदि बताना भयंकर भूल है। वस्तुत: चेतन एक और व्यापक नहीं, अपितु अनेक और भिन्न-भिन्न हैं।

यह अविनाशी जीव ही जड़ासक्ति को छोड़कर शिव है। इससे पृथक शिव, ब्रह्म, आदि की खोज करना आकाश नापना है।

* * *

80. प्रश्न—क्या श्री कबीर साहेब पंथवाद के समर्थक थे?

उत्तर—'पंथवाद' का तात्पर्य है अपने माने हुए पंथ या सम्प्रदाय में उलटी-सीधी चाहे जैसी बातें हों उन्हीं का समर्थन करते रहना। श्री कबीर साहेब इसके तनिक भी कायल नहीं थे; परन्तु सत्य बातों को मानने वालों की भी एक परम्परा हो जाती है, और वह परम्परा पंथ या सम्प्रदाय के नाम से पुकारी जाती है। उस परम्परा, पंथ एवं सम्प्रदाय वालों को सावधान रहना चाहिए कि वे अपनी परंपरा में किसी गलत मान्यता को स्थान न लेने दें। यदि किसी पंथ या सम्प्रदाय वाले किसी गलत एवं अवैज्ञानिक मान्यता को स्थान नहीं देते, सदैव सत्य में अनुराग रखते हैं और दूसरे पंथवालों की भी उचित बातों का आदर करते हैं, तो वह परम्परा पंथ तो कहला सकती है परन्तु उसमें पंथवाद का आरोप नहीं होगा।

81. प्रश्न—क्या कबीरपंथ कबीर दर्शन के अनुरूप है?

उत्तर—कबीरपंथ का दायरा वैदिक दायरा के समान ही बहुमुखी हो गया है और सब प्रकार के विश्वासी इसमें अपनी शाखा बना लिए हैं। इसलिए कबीरपंथ नाम मात्र से हम नहीं कह सकते कि वह सब-का-सब कबीर दर्शन की कसौटी पर खरा है। कबीरपंथ में कबीर दर्शन की मौलिक एवं खरी विचारधारा पर चलने वाली भी शाखाएं हैं और कबीर साहेब के मौलिक विचारों से कुछ या अधिक भिन्न होकर चलने वाली भी शाखाएं हैं। परन्तु वे सभी अपने को कबीर साहेब की सिधाई में समझती हैं। जैसे सभी हिन्दू या आर्य अपने को वैदिक कहते हैं चाहे परस्पर कितना अन्तर हो।

सद्गुरु कबीर का वास्तविक दर्शन क्या है इस पर अन्वेषण करें।

82. प्रश्न—गृहस्थी में रहकर काम-भोग से कैसे बचें?

उत्तर—वीर्य हानि में अपना पतन और ब्रह्मचर्य में असीम सुख जानकर जब ब्रह्मचर्य का दृढ़ निश्चय कर लिया जाता है, साथ-साथ संगदोष से दूर रहा जाता है, तब गृहस्थी में रहकर भी मनुष्य कामभोग से बच सकता है। इसके लिए भोजन-वस्त्र सादा, सद्ग्रन्थों का अध्ययन, सत्संग आदि आवश्यक हैं।

83. प्रश्न—संस्कार तथा वासना आदि हैं कि अनादि? यदि आदि हैं तो कब से और क्यों तथा अनादि हैं तो छूटेंगे कैसे?

उत्तर—वासना को आदि कहते नहीं बनता। बिना देह के वासना नहीं बनती और बिना वासना के देह नहीं बनती; अतएव दोनों प्रवाहरूप अनादि हैं।

वासना अनादि होने से भी उसका नाश हो सकता है। बीज और वृक्ष प्रवाहरूप अनादि हैं और बीज को आग में सेंक देने से उससे वृक्ष नहीं होता। इसी प्रकार वासना का अभाव कर देने से उसका नाश हो जाता है, इसलिए पुनः शरीर नहीं होता, और जीव अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है।

84. प्रश्न—कहा जाता है मन ही से सारा प्रपंच खड़ा है। जगह-जगह मन की बड़ी महिमा की गयी है, तो चेतन का क्या महत्त्व है?

उत्तर—चेतन का सर्वोपरि महत्त्व है। चेतन की सत्ता से ही मन सत्तावित है, अन्यथा वह पंगु है और कहना चाहिए कुछ नहीं है। परंतु चेतन जीव की सत्ता पाकर मन ही सारे प्रपंचों का कारण बना है। यदि व्यक्ति दीर्घ-काल तक वैराग्य-अभ्यास करके मन को समेट ले तो वह मुक्त हो जाये।

85. प्रश्न—सत्युग में राजा हरिश्चन्द्र और द्वापर युग में धर्मनिष्ठ युधिष्ठिर—ये मृत्युलोक से सशरीर स्वर्गलोक कैसे पहुंचे होंगे?

उत्तर—मनुष्य इस संसार में इच्छानुकूल रूप, सौन्दर्य, आयु, ऐश्वर्य और भोग नहीं पाता है; इसलिए अन्य लोकों में उनकी प्राप्ति की कल्पना करता है। वस्तुतः अपूर्ण कामनाओं की उपज स्वर्ग की कल्पना है। संसार के कुछ महान लोगों ने भी भोले और उद्दण्ड लोगों को पाप मार्ग से हटाकर पुण्य मार्ग में लगाने के लिए वीभत्स नरक तथा स्वर्णिम स्वर्ग का वर्णन किया है जो सर्वथा कल्पना है। हां, किये हुए पाप तथा पुण्य कर्मों के परिणाम जीव को मिलते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। सांसारिक सुख ही स्वर्ग है और दुख ही नरक है। सुख-दुख से परे शांति पद मोक्ष स्थिति है, जो जीव का अपना वास्तविक स्वरूप है।

ऊपर के विवेचन से सिद्ध हो गया कि स्वर्ग एक कल्पना है, फिर उसमें हरिश्चन्द्र और युधिष्ठिर का सशरीर पहुंचना अपने आप मिथ्या है।

86. प्रश्न—प्रारब्ध और पुरुषार्थ दोनों में कौन बड़ा है? क्या बिना पुरुषार्थ के केवल प्रारब्ध के बल पर जीवन में सफलता मिल सकती है? प्रारब्ध में अन्न-जल होंगे तो मिलेंगे यह कहना या मानना क्या उचित है?

उत्तर—प्रारब्ध और पुरुषार्थ दोनों में पुरुषार्थ बड़ा है; क्योंकि जो आज प्रारब्ध खड़ा है वह भी किसी दिन के किये हुए पुरुषार्थ का फल है। प्रारब्ध

का अपनी जगह पर महत्त्व है। यह प्रारब्ध ही है कि किसी की बुद्धि बड़ी प्रखर है और कोई एकदम मंद बुद्धि है। किसी को शारीरिक सुगठन, सौन्दर्य, नीरोग्यता प्राप्त है और कोई इन सबों से हीन है। कोई प्रतिभा का धनी है और कोई अत्यन्त निस्तेज है।

केवल प्रारब्ध पर बैठे रहने वाले की कभी उन्नति नहीं हो सकती। पुरुषार्थ व कर्म उन्नति का द्वार है। पीछे दिन का रखा हुआ बासी भोजन प्रारब्ध रूप है, परन्तु बिना पुरुषार्थ के वह भी पेट में नहीं जाता। प्रारब्ध के भरोसे पुरुषार्थ छोड़ बैठना आलस्य व अकर्मण्यता का लक्षण है। जल-भोजन प्रारब्ध में होंगे तो मिलेंगे ऐसा सोचना भी ठीक नहीं, उनके लिए प्रयत्न करना चाहिए।

भौतिक उन्नति में भी पुरुषार्थ की महान आवश्यकता है और आध्यात्मिक उन्नति के लिए तो पुरुषार्थ मुख्य है। किसी के प्रारब्ध में मोक्ष नहीं रहता, वह पुरुषार्थ से ही प्राप्त होता है।

87. प्रश्न—यदि मनुष्य के जीवन का लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है तो उसे किन नियमों का पालन करना होगा?

उत्तर—मनुष्य के जीवन का एकमात्र लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है। मोक्ष का अर्थ है समस्त आसक्तियों, वासनाओं का अन्त होकर जीव का अपने आप में शान्त हो जाना। इसके लिए यथार्थ ज्ञान एवं जड़-चेतन का भिन्न विवेक और विषयासक्ति की सर्वथा निवृत्ति आवश्यक है। इन सबके लिए यह आवश्यक है कि उपर्युक्त आदर्शों को जो प्राप्त हैं उनके प्रति श्रद्धा, उनकी उपासना, संगत एवं उनसे वार्तालाप किया जाये और उनकी सेवा करके उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण विषयों के ज्ञान और प्रभाव ग्रहण किये जायें। अन्ततः जीवनपर्यन्त ऐसी रहनी में रहा जाये जिससे अपने आपको विषयासक्ति से सर्वथा बचाकर स्वरूपस्थिति में निमग्न रहा जा सके।

88. प्रश्न—मनुष्य धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य एवं अच्छे-बुरे कर्म जानता है, फिर भी वह अधर्म, पाप और बुरे कर्म क्यों करता है?

उत्तर—क्योंकि वह विषयासक्तिवश प्रलोभन में भूल जाता है। व्यक्ति आसक्ति और प्रलोभनों को जीतकर ही ज्ञान के अनुसार आचरण अपना सकता है। आसक्ति और प्रलोभनों को जीतने के लिए आवश्यक है कुसंग का त्याग, सत्संग का ग्रहण, सद्ग्रंथों का स्वाध्याय, अपनी त्रुटियों पर ग्लानि, उन्हें सर्वथा दूर करने के लिए दृढ़ निश्चय।

89. प्रश्न—क्या हनुमानजी सचमुच सूर्य को निगल गये थे?

उत्तर—विज्ञान के मतानुसार सूर्य पृथ्वी से तेरह लाख गुना बड़ा दहकता

आग का पिण्ड है। उसे हनुमान जी निगल कैसे सकते हैं? यह कवि कल्पना है।

90. प्रश्न—जब एक दीपक से लाखों दीपक जल जाते हैं तब एक भक्त से लाखों भक्त क्यों नहीं बन जाते?

उत्तर—बन तो जाते हैं, आखिर प्रचार कैसे होता है? हां, सबसे लाखों भले न बनें, परन्तु कुछ तो बनते ही हैं और जो प्रतिभाशाली भक्त या सन्त होता है उससे लाखों लोग चेत जाते हैं।

91. प्रश्न—शरीर छूटते ही स्मरणशक्ति समाप्त हो जाती है, और जीव अचेत हो जाता है, तो वह खानियों में कैसे जाता है?

उत्तर—जीव मानव शरीर की जागृति-अवस्था में अनेक कर्मसंस्कारों का संग्रह कर रखता है। शरीर छूटने पर उन्हीं संस्कारों के अधीन पुनर्जन्म को प्राप्त होता है। पशु आदि खानियों के भी शरीर छूट जाने पर अन्त:करण के पूर्व बीज-वासनानुसार जीव को पुन: शरीर मिल जाता है। व्यक्ति जब सोने चलता है तब यह सोचकर नहीं सोता कि मैं अमुक स्वप्न देखूंगा परन्तु सो जाने पर स्वप्न आते हैं और वे ही आते हैं जिनके संस्कार व वासनाएं मन में बनी हैं। मृत्यु होने पर जीव का स्थूल शरीर तो छूट जाता है, परन्तु सूक्ष्म शरीर उसके साथ रह जाता है। उसी सूक्ष्म शरीर में सारे कर्मसंस्कारों की सामग्री रहती है जिससे जीव पुनर्जन्म को प्राप्त होता है।

92. प्रश्न—वासना, संस्कार तथा स्मरण में क्या अन्तर है?

उत्तर—जड़ासक्ति के जमे हुए बीज वासना या संस्कार हैं तथा वृत्ति का ख्याल होना स्मरण है। कर्मी जीवों के अन्त:करण में वासनाबीज हर समय रहते हैं, परन्तु स्मरण हर समय नहीं रहते।

93. प्रश्न—आत्महत्या क्या है तथा उसका फल क्या होता है?

उत्तर—वैसे तो अपने आप का कल्याण न करना आत्महत्या है, और उसका परिणाम है जन्मादि संकटों में भटकते रहना। परन्तु स्थूल दृष्टि से अपने शरीर का नाश कर देना आत्महत्या है; और इसका परिणाम दुख है। यदि धर्म की रक्षा के लिए कोई आत्महत्या करता है तो उसका परिणाम उज्ज्वल ही होगा।

94. प्रश्न—स्वस्वरूप क्या है?

उत्तर—'स्व' कहते हैं स्वत: या खुद को, रूप कहते हैं पदार्थ को; इस प्रकार अपना चेतन पदार्थ ही स्वस्वरूप है। उसे नेत्रों से तथा कल्पना में देखने

की चेष्टा निरर्थक है। जो कुछ नेत्रों से दिखाई देगा वह रूप विषय एवं जड़ होगा और जो कुछ कल्पना में दिखेगा वह मन:प्रसूत रहेगा। वस्तुत: पंच ज्ञानेन्द्रियों से एवं मन:कल्पना में जो देखता है वह द्रष्टा ही चेतन है, वही अपना स्वरूप है जो सबको देखता है। उसे कौन देख सकता है? सूर्य अन्य को प्रकाश देता है और स्वयं प्रकाशस्वरूप रहता है। सूर्य को दूसरा प्रकाश नहीं दे सकता। इसी प्रकार जीव सबको जानता है और स्वयं ज्ञान स्वरूप रहता है।

95. प्रश्न—प्रात: तथा सायं किसके संध्या, वंदन एवं ध्यान किये जायें?

उत्तर—प्रात: और सायं कुछ समय निकालकर मन को एकाग्र करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। इसमें शैली अपने श्रद्धा-विश्वास के अनुसार रखना ठीक है। जिस प्रकार मन एकाग्र हो सके वही साधन उचित है। पहले किसी सन्त पुरुष का ध्यान अच्छा साधन है। फिर तो सब साधनों का अंत करके अपने आप शांत रह जाना ही परम लक्ष्य है। यह अभ्यास और वैराग्य पर निर्भर करता है। सद्ग्रंथों का स्वाध्याय अधिक फलप्रद है।

96. प्रश्न—मैं कौन हूं? जगत क्या है? मेरे बंधन क्या हैं? ये कैसे छूटेंगे?

उत्तर—मैं अविनाशी चेतन हूं। जगत परिवर्तनशील जड़ है। विषयासक्ति मेरा बंधन है; और भक्ति, ज्ञान, वैराग्य से वह छूट सकता है।

97. प्रश्न—सृष्टि रचयिता विष्णु हैं या जीव?

उत्तर—सृष्टि अनादि है। जीव वासनावश इस सृष्टि में अनादिकाल से घूम रहे हैं। विष्णु भी एक जीव है, उनकी भी वही दशा है।

98. प्रश्न—गृहस्थाश्रम में रहकर मोक्ष-साधना का क्या उपाय है?

उत्तर—जल में कमल के समान गृहस्थी से अनासक्त होकर रहना और सन्त-गुरुजनों की सेवा तथा सत्संग करते हुए साधनापरायण रहना।

99. प्रश्न—अपनी पत्नी के प्रति पति का क्या कर्तव्य है?

उत्तर—पत्नी के साथ मधुर व्यवहार रखते हुए उसे और अपने को मोक्षपथ में ले चलना।

100. प्रश्न—क्रोध का नाश कैसे करें तथा क्रोधी मनुष्य को कैसे समझावें?

उत्तर—अपने क्रोध का नाश तभी किया जा सकता है जब अपनी त्रुटियों को देखा जाये, अपने अहंकार को दूर किया जाये तथा अपने मन की कामनाओं पर विजय प्राप्त की जाये। क्रोध के भयंकर कुपरिणाम को नजर में रखकर

क्रोध का त्याग किया जा सकता है। क्रोध के बाद पश्चाताप, ग्लानि, दुख, हानि, रोग, मानसिक उलझनें बढ़ती हैं—ऐसा समझ लेने पर क्रोध अवश्य दूर होगा । क्षमाशील तथा शीतल महापुरुषों का स्मरण कर लेने पर क्रोध दूर हो सकता है।

प्रात: सोकर उठो और बिस्तर पर ही दृढ़ निश्चय करो कि आज तुम क्रोध नहीं करोगे, क्रोध को बिलकुल नहीं आने दोगे। इस निश्चय को लेकर अपने दिनभर के कामकाज में रहो, देखोगे तुम्हें जब क्रोध आने को होगा मन में रोक लगेगी। यदि क्रोध आ गया तो पीछे ग्लानि होगी। रात में सोते समय दिन भर पर सिंहावलोकन करो तुम्हें कब-कब और कितनी बार क्रोध आया है। तुम देखोगे क्रोध का कारण छोटा रहा है और क्रोध का परिणाम भयंकर। अब पुन: हुए क्रोध पर ग्लानि करो और आगे क्रोध का सर्वथा दमन करने का दृढ़ निश्चय करो। इस प्रकार नित्य क्रोध को जीतने का निश्चय और पुरुषार्थ करते जाओ तो निश्चित तुम उस पर विजयी हो जाओगे।

रहा, क्रोधी मनुष्य को समझाने की बात, सो क्रोध के समय वह समझ नहीं सकता है। क्रोध उतर जाने पर उपर्युक्त बातें समझायी जा सकती हैं। कोई क्रोध में भर आया है यदि तुम उस समय हंस दो, विनम्र हो जाओ, उसकी बात यदि सम्भव हो तो मान लो तो उसका क्रोध अवश्य शान्त हो सकता है।

101. प्रश्न—स्वार्थ में फंसे हुए जीव को परमार्थ की कमाई करने का क्या उपाय है?

उत्तर—सन्तों के सत्संग, सद्ग्रंथों के अध्ययन तथा बारम्बार अच्छे विचार लाने से मनुष्य स्वार्थ की आसक्ति को जीतने की क्षमता प्राप्त करता है। वैसे सब जीव को स्वार्थ की आवश्यकता है। भोजन, वस्त्र, निवासस्थान तथा जीवनधारणोपयोगी अन्य वस्तुओं का उपार्जन, संग्रह, रक्षा, उपभोग आदि ही स्वार्थ है और इसकी सबको आवश्यकता है। हां, मनुष्य के स्वार्थ और कुत्ते के स्वार्थ में अन्तर है। चार मनुष्यों के बीच में रोटी रख दी जाये तो वे बांटकर खायेंगे और चार कुत्तों के बीच में रोटी रख दें तो वे लड़कर खायेंगे और हो सकता है कि परस्पर की लड़ाई में रोटी धूल-कीचड़ में सनकर खराब हो जाये या कौआ उठा ले जाये। मनुष्यों में भी बहुत-से ऐसे लोग होते हैं जिनका स्वार्थ कुत्तों का होता है। ऐसा स्वार्थ अत्यन्त घृणित होने से निन्दनीय और त्याज्य है। जैसा कि पहले बताया गया कि स्वार्थ के बिना किसी का चल नहीं सकता। हां, स्वार्थ मानवतापूर्ण होना चाहिए। बांटकर खाना चाहिए। भौतिक वस्तुओं के लिए संघर्ष नहीं होना चाहिए।

स्वार्थ = स्व + अर्थ = अपना प्रयोजन। स्वार्थ का तात्पर्य है अपना

प्रयोजन। आपका मुख्य प्रयोजन क्या है? शांति की प्राप्ति। अतएव सच्चा स्वार्थ शांति एवं कल्याण की प्राप्ति ही है। लोग स्वार्थ-स्वार्थ कहते हैं; परन्तु सच्चा स्वार्थ नहीं जानते। सच्चा स्वार्थ तो जीव का कल्याण ही है और यही परमार्थ भी है। परम + अर्थ = परम प्रयोजन शांति की प्राप्ति है। शांति की प्राप्ति तभी होगी जब मनुष्य विकारों को छोड़ते हुए जीवन को निर्मल करता जायेगा।

* * *

102. प्रश्न—कबीर किसे कहते हैं?

उत्तर—कबीर भारत में एक महान सन्त हो गये हैं। वे महामानव, महात्मा और सत्य के जिज्ञासुओं के सद्गुरु हैं। क = काया, बीर = जीतनेवाला। इस प्रकार काया को जीतने वाले इन्द्रियजित को भी कबीर कहते हैं। काया के निवासी काया में श्रेष्ठ जीव को भी कबीर कहते हैं।

श्री गुरुदयाल साहेब ने कबीर परिचय में कहा है—

पन्द्रह तत्त्व स्थूल तन, नौ तत्त्व लिंग शरीर।
चौबिस मृतुक जेहि से जिये, सो जिन्दा जीव कबीर॥

103. प्रश्न—बन्दगी का अर्थ क्या है?

उत्तर—बन्दगी का अर्थ है वन्दना। विद्वन्मूर्ति श्री विचार साहेब 'बन्दगी विचार' में कहते हैं—परस्पर विरोधी हिन्दू और मुसलमानों को एक रास्ते पर लाने के लिए सद्गुरु कबीर ने एक बीच का रास्ता निकाला है, जो कि दोनों को अनुकूल हो। यही कारण है कि इनकी वाणी में संस्कृत और फारसी दोनों का मेल रहता है। 'बन्दगी साहेब' भी एक ऐसा वाक्य है कि इसमें संस्कृत और फारसी दोनों शब्द हैं। इनमें से 'बन्दगी' शब्द तो शुद्ध संस्कृत है, क्योंकि ''वदि अभिवादन-स्तुत्या:'' अभिवादन और स्तुति अर्थ वाले 'वदि' धातु से भावार्थक 'धञ' प्रत्यय करने से 'वन्द' शब्द सिद्ध होता है जिसका अर्थ 'वन्दन वन्द:' इसके अनुसार वन्दना करना होता है। 'वन्दनस्य वन्दनाया: गीर्वाणी वन्दगी'। इस निरुक्ति से बन्दगी शब्द का अर्थ वन्दना वचन होता है।

104. प्रश्न—मुझे उपन्यास पढ़ने की आदत है। मैं उसे छोड़ना चाहता हूं, परन्तु छूट नहीं रही है। मैं सद्ग्रंथ पढ़ना चाहता हूं, परन्तु उसमें मेरा मन नहीं लगता। मैं कैसे सुधार करूं?

उत्तर—किसी वस्तु का हानिप्रद जानकर त्याग तथा लाभप्रद जानकर ग्रहण होता है। पहले उपन्यास पढ़ना हानिप्रद तथा सद्ग्रंथ पढ़ना लाभप्रद समझें।

तत्पश्चात उपन्यास की जगह सद्ग्रंथ पढ़ना आरम्भ करें। पहले सद्ग्रंथ पढ़ने में मन कम लगेगा, परन्तु थोड़ा-थोड़ा नित्य पढ़ते जाने से उसमें रुचि बढ़ जायेगी।

उपन्यास सर्वथा काल्पनिक होते हैं। कल्पना द्वारा भी उज्ज्वल मानवीय चरित्र का चित्रण हो तो उत्तम है; परन्तु ऐसे उपन्यास बहुत कम होते हैं। जो होते भी हैं—उनमें लोग रुचि नहीं लेते। उपन्यास के नाम पर जो बाजारों में पुस्तकें बिकती हैं और जिन्हें लोग पढ़ते हैं, केवल बकवास और अनर्थकारी हैं। उनके द्वारा चरित्र पर दूषित प्रभाव पड़ता है। अत: उपन्यास छोड़कर सद्ग्रंथ पढ़ो जिससे चरित्र का निर्माण हो।

105. प्रश्न—सुधा वृष्टि भइ दुइ दल माहीं। जिये भालु कपि निश्चर नाहीं॥ जब दोनों दल में अमृत की वर्षा हुई तब केवल भालु-कपि ही क्यों जिये, निश्चर क्यों नहीं जिये?

उत्तर—मनुष्य का अपना चेतन स्वरूप ही अमर होने से अमृत है। अन्यथा अमृत नाम की कोई अन्य वस्तु कहीं है ही नहीं। अमृत वर्षा का कथन ही काल्पनिक है। हां, इसका यह अर्थ किया जा सकता है कि संसार में सन्त-महात्मा ज्ञानोपदेश रूप अमृत की वर्षा करते हैं, उसको श्रवण, मनन और धारण करके सतोगुणी लोग तो अपना कल्याण कर लेते हैं और तामसी लोग उन उपदेशों से कोई लाभ नहीं उठा पाते।

106. प्रश्न—क्या मोक्ष और अमरता में अन्तर है?

उत्तर—बन्धनों से छूट जाना मोक्ष है और नित्य स्थिर रहना अमरता है। जन्म-मरण से छूट जाने को अमरता की प्राप्ति कहते हैं। इस दृष्टि से मोक्ष और अमरता एक ही है।

107. प्रश्न—अमरता कब मिलती है, शरीर रहते-रहते या उसके बाद?

उत्तर—शरीर रहते-रहते जो व्यक्ति छूटने वाली चीजों का मोह छोड़ देता है और अपने अमर स्वरूप चेतन में स्थित हो जाता है वही अमरता प्राप्त है। उसका शरीर छूट जाने पर उसे पुन: शरीर नहीं धारण करना पड़ता।

108. प्रश्न—किस प्रकार इन्द्रियों पर विजय पायी जाये?

उत्तर—सन्तों के सत्संग, सद्ग्रंथों के अध्ययन तथा तत्त्वविवेक से जब विषयों की असारता, दुखरूपता तथा क्षणभंगुरता मन में जम जायेगी तब इन्द्रिय-मन पर अपने आप विजय हो जायेगी।

109. प्रश्न—पशु और पक्षी हमेशा नग्न रहते हैं; फिर भी उनको कामभाव समयानुसार होता है; परन्तु श्रेष्ठ मानव हर प्रकार से परदा में रहते हुए भी

प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध कार्य करता है, क्यों?

उत्तर—पशु में अधिक मानसिक विकास नहीं होता। उसका जीवन स्वाभाविक होता है। इसलिए कामादिक भाव भी उसको स्वभावानुसार ही उठते हैं। मानव मानसिक क्षेत्र में सर्वोच्च विकासशील है। उसमें सोचने-समझने की महत्तम शक्ति है। वह भाषा, व्याकरण, कला, विज्ञान, कामाचार, ब्रह्मचर्य, चौरत्व, हिंसा, क्षमा, असाधुता तथा साधुता—जिस ओर पूरे बल से सोचेगा उधर गहराई में उतर जायेगा।

जिसके पास पैसे नहीं हैं वह न कसाईखाना खुलवा सकता है और न धर्मशाला। जिसके पास पैसे हैं वह कुछ भी खुलवा सकता है। पशु का मन विकासशील न होने से वे स्वाभाविक दशा में रहते हैं और मनुष्य का मन विकासशील होने से वह जिस ओर लक्ष्य करता है उसी ओर हद कर देता है।

शरीर निर्माण में मूल विषयासक्ति है। पांचों इन्द्रियों के सामने पांचों विषय विद्यमान हैं; अतएव अन्तर-बाहर विषय का भाव एवं वातावरण पाकर प्राय: हर प्राणी विषयासक्त है। अतएव मनुष्य के लक्ष्य में विषयासक्ति होने से वह उसके विषय में अपने विकासशील मन से सोचता है और उसकी ही गहराई में उतर जाता है। इसलिए परदा, मर्यादा, नीति, दण्डविधान आदि होते हुए भी मनुष्य अधिक विषय-पतित है।

हां, जिसका लक्ष्य अन्तर्मुख हो जाता है वह विषयों से सर्वथा विरक्त हो जाता है। विकसित मन वाला मानव जब विषय-निवृत्ति की दिशा में सोचता है तब उसका हृदय विषय-वासना से सर्वथा शून्य हो जाता है जो पशु नहीं कर सकता।

मनोविज्ञान के श्रेष्ठ पण्डित सिगमण्ड फ्रायड तथा कुछ भारतीय आधुनिक फ्रायड जो यह कहते हैं कि ''यदि मनुष्य नंगे रहेंगे और नर-नारी अभेद व्यवहार बरतेंगे तो वे कामातुर नहीं होंगे''—एक भ्रमधारणा है। इस भ्रमधारणा का परिणाम पश्चिमी देश भुगत रहा है जहां 45 प्रतिशत अवैधानिक गर्भ रहते हैं तथा किशोरों और किशोरियों में प्रमेह आदि नाना यौन रोग व्याप्त हैं। समलैंगिक विवाह उसका अति है। अतएव नीति, मर्यादा, परदा सब आवश्यक हैं।

110. प्रश्न—वैयक्तिक भोगवाद किसे कहते हैं?

उत्तर—वह मान्यता जो समाज के लिए न होकर व्यक्ति विशेष के लिए हो, वैयक्तिक भोगवाद है। अर्थात जिस भोग में व्यक्ति को महत्त्व दिया जाये, समाज को नहीं।

111. प्रश्न—गुरु और लघु में क्या भेद है?

उत्तर—मर्यादा की जगह से भाव का भेद है; जैसे कोई व्यक्ति अपने शिष्य के समक्ष गुरु है, परन्तु अपने गुरु के समक्ष लघु है। यह गुरु-शिष्य की मर्यादा है और इसमें भाव एवं मान्यता का भेद है।

वास्तविकता के धरातल पर वस्तुस्थिति का भेद है; जैसे चित्रकला के सम्बन्ध में, जो चित्रकला में निपुण है वह गुरु है और जो चित्रकला नहीं जानता वह लघु है। जो अनासक्त है वह गुरु है, श्रेष्ठ है और जो आसक्त हो वह लघु एवं छोटा है।

112. प्रश्न—'साहेब' का शब्दार्थ क्या है, कहां से और कब हुआ?

उत्तर—'साहेब' या 'साहब' कुछ विद्वानों की दृष्टि से फारसी और कुछ की दृष्टि से अरबी शब्द है। इसका अर्थ स्वामी है। यह विदेशी है। यह कहां से और कब हुआ, कहना कठिन है। यह खोज का विषय है, जिसमें कोई लाभ नहीं। हां, हिन्दी साहित्य के दो भारतीय दिग्गज श्री कबीर साहेब और गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपनी वाणियों में 'साहेब' शब्द का प्रयोग स्वामी के लिए किया है। जिसका अर्थ मालिक, गुरु, भगवान आदि यथास्थान लगाया जा सकता है। प्रमाणस्वरूप श्री कबीर साहेब बीजक में कहते हैं—

पूरा साहेब सेइये, सब विधि पूरा होय।
ओछे से नेह लगाय के, मूलहु आवै खोय॥ साखी 309॥
साहेब साहेब सब कहैं, मोहिं अँदेशा और।
साहेब से परिचय नहीं, बैठोगे केहि ठौर॥ साखी 181॥
तेहि साहेब के लागहु साथा, दुइ दुख मेटि के होहु सनाथा॥ रमैनी 75॥

गोस्वामीजी कहते हैं—

सेवक कर पद नयन सो, मुख से साहिब होय।
तुलसी प्रीति की रीति लखि, सुकवि सराहैं सोय॥
गुरु गोसाइं साहिब सियरामू। लागत मोहिं नीक परिणामू॥
प्रभु तरु तर कपि डार पर, ते किय आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम सम, साहिब शील निधान॥ (मानस)

113. प्रश्न—एक व्यभिचारी किस विधि से ब्रह्मचारी बन सकता है?

उत्तर—व्यभिचार और विषयासक्ति में दोष तथा दुख समझ लेने पर, प्रत्युत उसे ही दुखों का केन्द्र जान लेने पर और ब्रह्मचर्य में अनन्त सुख-शान्ति का ज्ञान हो जाने पर व्यभिचारी भी ब्रह्मचारी बन सकता है। हिंसक एवं क्रूर

रत्नाकर जैसे दयालु बाल्मीकि बन गये, वैसे व्यभिचारी ब्रह्मचारी बन सकता है। जो व्यभिचारी तथा अधिक विषयासक्त है निश्चित ही उसके पास मनोबल है। परन्तु वह विपरीत दिशा में लगा हुआ है। जब उसे अपने हानि-लाभ का वास्तविक ज्ञान हो जायेगा, तब उसका मनोबल विषयासक्त त्यागने और ब्रह्मचर्य धारण करने में लग जायेगा।

जिस रात गांधीजी के पिता की मृत्यु होने वाली थी गांधी समझते थे कि आज पिताजी मौत से बचेंगे नहीं। ऐसे उनके लक्षण ही थे। परन्तु वे इस अन्तिम समय में अपने पिता के पास नहीं रह सके। जिस समय उनके पिता का शरीर छूटा, गांधीजी अपनी पत्नी के कमरे में थे।

अपनी इस विषयासक्ति से गांधीजी को बड़ी घृणा हुई और वे आदर्श ब्रह्मचारी बने।

जिसमें मनोबल नहीं होता वह न दुर्गुणी होता है और न सद्‌गुणी। वह पशुवत कमा-खाकर मर जाता है। जिसके पास मनोबल है वही दुर्गुणी अथवा सद्‌गुणी हो सकता है। अत्यन्त विषयासक्त भर्तृहरि अत्यन्त वैराग्यवान हुए। जिसके पास तेज गाड़ी है वह विपरीत दिशा में जैसे तेज जा सकता है वैसे अनुकूल दिशा में भी। हां, दिशा निर्धारित कर लिया जाये और वैसा संग, साहित्य, रुचि का आधार पकड़ लिया जाये, बस काम बना-बनाया है।

114. प्रश्न—प्रकृति की हर वस्तु मानव के लिए है तो मानव किसके लिए है और किस प्रकार है?

उत्तर—मानव अपने और दूसरे के कल्याण के लिए है। दूसरे का कल्याण वही कर सकता है जो अपना कल्याण पहले कर ले। अपना कल्याण तभी सम्भव है जब मनुष्य अपनी बुराइयों को देखकर निकाले।

115. प्रश्न—जब जीव कर्म करने में स्वतंत्र है तब फल भोगने में परतन्त्र क्यों है?

उत्तर—क्योंकि वह कर्म कर चुका है। हम अपने पैर में कुल्हाड़ी मारें या न मारें, स्वतन्त्र हैं; परन्तु जब मार लिए तब उसका फल भोगने में उसी के अधीन हैं। हम आम या प्याज खायें या न खायें स्वतन्त्र हैं; परन्तु खाकर उनकी सुगन्धी-दुर्गन्धी का अनुभव करना ही पड़ेगा।

116. प्रश्न—'नारी नरकस्य द्वारं' साधना के क्षेत्र में कहां तक उचित है

उत्तर—'नारी नरक का द्वार या दुखों का घर है' यह कहना मुमुक्षु पुरुषों के मन को स्त्री की आसक्ति से छुड़ाने का एक प्रयास है। इस दृष्टि से यदि

मुमुक्ष्वी नारी का मन पुरुषों की आसक्ति से विरक्त करना पड़े तो पुरुषों को नरक का द्वार तथा दुखों का केन्द्र कहना पड़ेगा।

वस्तुतः स्त्री और पुरुष—दोनों के शरीर नरक हैं। दोनों के शरीर से आसक्ति दुखों का कारण है।

चाहे नर हो या नारी, उनके अपने मन की विषयासक्ति ही नरक है। पुरुष अपने मन की विषयासक्ति जब नहीं दूर कर पाता तब वह स्त्रियों को गाली देता है। है उसकी अपनी दुर्बलता, परंतु वह अपने अज्ञानवश स्त्रियों को कोसता है। कुछ ऐसे साधक हैं जो स्वयं तो विषयासक्ति से सर्वथा मुक्त हैं, परन्तु वे पूर्वग्रहवश दूसरे मुमुक्षुओं के हित के लिए स्त्रियों के दोषों का वर्णन कर जाते हैं। कितने साधक-कवि तो रस्म पूरी करते हैं। उनके विचार से स्त्रियों को जब तक कुछ भला-बुरा न कह लिया जाये तब तक मानो सच्चा वैराग्य ही नहीं हुआ।

स्त्री कोई निर्जीव पदार्थ नहीं है कि वह केवल जीव का बन्धन है। स्त्री और पुरुष दोनों के शरीरों में एक समान चेतन जीव हैं और दोनों का बन्धन विषयासक्ति है जो दोनों के अपने-अपने मन में है। वास्तविकता का विवेक होने पर वह मिटेगी, किसी को भला-बुरा कहने से नहीं।

117. प्रश्न—यदि कोई हमें फिजूल तंग करे तो हमें क्या करना चाहिए?

उत्तर—सहन और क्षमा महान अस्त्र हैं जिनसे दुष्ट भी सज्जन बन जाता है। जीवन में पदे-पदे सहन और क्षमा की आवश्यकता है। सहन और क्षमा में हानि दिखे तो भी उन्हें न छोड़ना चाहिए; क्योंकि उनमें सच्चा लाभ है। न सहने और बदला लेने से दुख और हानि बढ़ते हैं, यह गम्भीरता से सोचने पर पता चलेगा।

इसका तात्पर्य यह नहीं कि आदमी डरपोक बन जाये और हर अत्याचार को होने दे। डरपोक होना बहुत बड़ा अपराध है। किन्तु अत्याचार का निरोध भी सहन, क्षमा और गम्भीरतापूर्वक होना चाहिए।

* * *

118. प्रश्न—जीव अविनाशी हैं तो प्राणिजगत में जन्तुओं की वृद्धि हर 25 वर्ष में दुगुनी कैसे हो जाती है?

उत्तर—जीव अविनाशी हैं और जड़ भी नित्य है। इस संसार में जीव और जड़कण जितने हैं उतने ही सदा से हैं और आगे सदैव रहेंगे। उनमें न कम होंगे न अधिक।